अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 9 भाद्रपद-आश्विन वि.सं. 2082 सितम्बर, 2025 पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

समिति में मनाया गया स्वाधीनता दिवस

❑

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में 79वें स्वतंत्र दिवस पर वरिष्ठ पत्रकार प्रवीणचंद्र छाबड़ा ने ध्वजारोहण किया। 96 वर्षीय प्रवीणजी उस पीढ़ी के पत्रकारों में से हैं जो अपनी युवावस्था में 1947 में आजादी के पहले दिन मने जश्न के गवाह बने।

ध्वजारोहण के बाद समिति के साथियों के समक्ष अपने सम्बोधन में उन्होंने आजादी की जंग के दौर के अपने रोमांचक अनुभव सुनाते हुए बताया कि आज़ादी की पहली सुबह जयपुर में सेठ सोहनलाल दुग्गड़ ने अपने साथियों के साथ मिल कर स्नेह भोज का आयोजन किया जिसमें तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं को त्यागते हुए को सवर्णों ने अपने हाथों से अस्पृश्य हरिजनों को जिमाया और खुद भी उनके साथ बैठ कर ही नहीं उनके हाथों से परोसा भोजन किया। इस तरह जागरूक लोगों ने आजादी के पहले ही दिन अस्पृश्यता की कुरीति पर प्रहार करते हुए नये भारत की नींव रखी।

इस अवसर पर उन्होंने 1940 के बाद के उस राजनीतिक माहौल व घटनाक्रम की भी चर्चा की जिसके चलते देश का विभाजन हुआ। उन्होंने देश के सामाजिक और बुरे आर्थिक हालात का भी जिक्र किया जिनसे निबटते हुए देश विकास की डगर पर बढ़ा।

कार्यक्रम में समिति के पुराने साथी भी मौजूद थे। ❑

वाणी

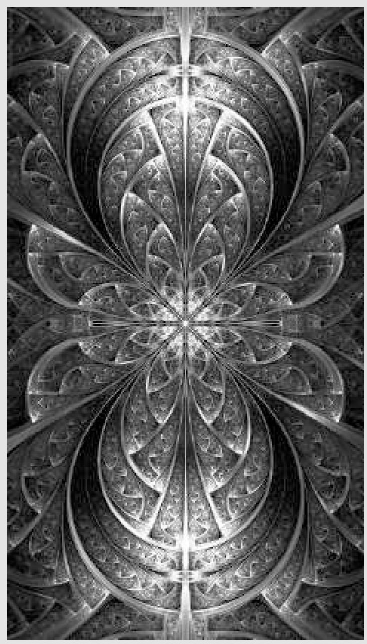

विद्वत्त्वं दक्षता शीलं सङ्कान्तिरनुशीलनम्।
शिक्षकस्य गुणाः सप्त सचेतस्त्वं प्रसन्नता।।

–सुभाषित

विद्वता, निपुणता, विनम्रता, चिंतन, मनन,
सचेत व प्रसन्न रहना शिक्षक के ये सात गुण हैं।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 9 भाद्रपद-आश्विन वि.सं. 2082 सितम्बर, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. सुभाषित

संपादकीय

5. प्रश्न करने की सनातन परंपरा

लेख

7. हफ़्ते में सिर्फ़ चार दिन काम के आए कई फायदे सामने **– सोफ़िया बेटिज़ा**

10. भारत में खाद्य उत्पादन : एक विवेचन **– डॉ. प्रकाश नारायण कल्ला**

12. हम आखिर बहस क्यों करते हैं ! **– आलोक ब्रजनाथ**

14. अनिल बोर्दिया की याद **– सुधेन्दु पटेल**

17. सुर्खियां हमारी सोच को कैसे बदल देती हैं ! **– मारिया कोनिकोवा**

20. आवासीय स्कूल में चरित्र निर्माण, भविष्य निर्माण **– विपिन सोंधी** **– हिम्मत ढिल्लों**

पुस्तक चर्चा

21. थैंक यू, गांधी : आंसू में कलम डुबो कर लिखी गाथा **– रा. बो.**

24. अनुत्तर के अमूर्त रंग में भारतीय दर्शन और चेतन की अनुगूंज **– रा. बो.**

आलेख

25. गहराई से ध्यान लगा कर काम करने का कौशल जरूरी **– कैल न्यूपोर्ट**

स्मृति शेष

27. जेम्स बॉन्ड को लोगो देने वाले कैरॉफ़ का निधन

फोटो : सुधीर कासलीवाल

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

प्रश्न करने की सनातन परंपरा

भारत में प्रश्न करने की सनातन परंपरा रही है। हमारे पुरातन ग्रंथ प्रश्नों से ही शुरू होते रहे हैं। प्रश्न भारतीय दर्शन में प्रमुख भूमिका निभाते आए हैं। प्रश्न जीवन के भौतिक अनुभवों के भी होते आए हैं और आध्यात्मिक भी। आज भी प्रश्न हमारी बातचीत में शामिल होते हैं, हमारी जिज्ञासा को बढ़ाते हैं और हमारे विचारों को आकार देते हैं। वे हमें खोज करने, संवाद करने, परवाह दिखाने, खुद को अभिव्यक्त करने, दूसरों को चुनौती देने, बहस करने के लिए ही नहीं प्रेरित करते बल्कि छोटी-मोटी बातचीत में भी शामिल होने में मदद करते हैं। कभी-कभी सिर्फ़ जवाब सुनने के लिए ही प्रश्न कर लिए जाते हैं। प्रश्न व्यक्ति और समाज, दोनों के लिए ज़रूरी उपकरण हैं। सही फ़ैसले लेने के लिए ज़रूरी जानकारी खोजने और उस तक पहुंचने का एक तरीका तो प्रश्न होते ही हैं। प्रश्न जानकारी खोजने की प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं।

किन्तु हर प्रश्न का साफ़-सुथरा उत्तर नहीं होता। कुछ सवालों का कोई जवाब भी नहीं होता। कुछ सवाल बिना किसी उम्मीद के भी पूछे जाते हैं। ऐसा भी माना जाता रहा है कि प्रश्न उत्तरों के लिए नहीं होते ˉ वे स्वयं अपने आप में खड़े होते हैं। किसी ने यह तर्क दिया है कि प्रश्न केवल विचार की शुरुआत के लिए नहीं होते हैं, बल्कि उसके अंत तक पहुंचने के लिए एक यात्रा होते हैं। इसीलिए दर्शनशास्त्र में, प्रश्न उत्तरों से ज़्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। समूचा दर्शनशास्त्र प्रश्नों पर ही आधारित है। इतिहास के महान प्रश्नकर्ता दार्शनिक हुए हैं। मगर किसी को आश्चर्य हो सकता है कि शायद ही कभी किसी दार्शनिक ने यह पूछा हो कि प्रश्न वास्तव में क्या हैं, प्रश्नों की प्रकृति और शक्ति क्या है?

हमारे सामने जिज्ञासा का एक विशाल परिदृश्य फैला है, जो ऐसे प्रश्नों से भरा है जो हमें प्रश्न करने की प्रकृति पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है। दार्शनिक प्रश्न कहां से आते हैं? प्रश्न करने वाले मन और उसके द्वारा प्रस्तुत प्रश्न के बीच क्या संबंध है? कोई दार्शनिक दृष्टि से प्रश्नों का कैसे सामना करता है? क्या कोई प्रश्न सही या गलत हो सकता है? क्या ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर नहीं हैं और फिर भी वे पूछने लायक हैं? क्या प्रश्न केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए होते हैं, या वे हमें उनके उत्तरों की भी समझ देते हैं? क्या हो अगर प्रश्न की सबसे बड़ी शक्ति समाधान में नहीं, बल्कि परिवर्तन में हो?

गहराई से देखें तो जीवन स्वयं एक खुला प्रश्न है, एक विशाल ब्रह्मांडीय पहेली है। जीवन की मूलभूत अनिश्चितता आरंभ से ही दर्शन और विज्ञान दोनों को प्रेरित करती रही है। हम जीवन के सबसे गहरे प्रश्न पूछते रहे हैं। और यह भी दिलचस्प बात है कि जब हम प्रश्नों के उत्तरों की मांग नहीं करते और प्रश्न चिह्न के साथ उसे छोड़ देते हैं, तब भी हम कुछ गहन खोज लेते हैं। इसीलिए हमारी दार्शनिक और रहस्यवादी परंपराएं निरंतर प्रश्नों से ही फली-फूली हैं। अपने सार्वजनिक व्याख्यानों में, खासकर प्रश्नोत्तर सत्रों के दौरान, जब श्रोता ठोस उत्तरों की अपेक्षा रखते थे, तब जे. कृष्णमूर्ति जैसे लोग उनकी अपेक्षाओं को धता बता देते थे। एक बार उन्होंने ऐसे ही एक सत्र की शुरुआत एक सरल मगर गहन प्रश्न से की: क्या प्रश्नों के उत्तर ज़रूरी हैं, या सिर्फ़ प्रश्न ही हैं? कृष्णमूर्ति के लिए, उत्तर मायने नहीं रखता था, बल्कि यह मायने रखता था कि प्रश्न का सामना कैसे किया जाए। समाधानों की तलाश करने के बजाय, उन्होंने लोगों से अपनी प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण करने का आग्रह किया, जैसे पलायन की प्रवृत्ति, आसान निष्कर्षों पर पहुंचने की प्रवृत्ति आदि।

यदि एक प्रश्न, जिसका पूरी तरह से सामना किया जाए तो वह मन का दर्पण बन जाता है। प्रश्नों का समाधान करने के बजाय, कृष्णमूर्ति अपने श्रोताओं को बिना किसी पूर्वधारणा के, बिना किसी हिचकिचाहट के प्रश्नों के भीतर उतरने, उनकी जांच-पड़ताल करने के लिए आमंत्रित करते थे और कहा करते थे कि उत्तर प्रश्न में ही है।

एक सनातन सवाल रहा है कि ईश्वर क्या है? वह अज्ञेय है। मगर प्रश्न होता है कि क्या मन अतीत के ज्ञान से पूरी तरह मुक्त होकर, विश्वासों की शरण लिए बिना, अज्ञेय से मिल सकता है? विचार ही वह उपकरण होता है जिस पर हम अपनी खोजबीन के लिए निर्भर करते हैं। मगर वही अपर्याप्त साबित हो जाता है। जब किसी प्रश्न को पूरी जागरूकता के साथ, बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की जल्दबाजी के, उठाया जाता है, तभी कुछ उल्लेखनीय घटित होता है जो ज्ञान, ऊर्जा और मुक्तिदायी शक्ति के किसी अनछुए स्रोत को खोल देता है। तो क्या सिद्धांतों या सुव्यवस्थित अवधारणाओं के अब तक के सभी आरामदेह दृष्टिकोणों को नकारना जरूरी है ताकि मनुष्य अपनी जागृति की पूरी ज़िम्मेदारी खुद ले; अपनी दार्शनिक निद्रा से जागे; भ्रम से बाहर आए, और सच्ची खोज के मार्ग पर आगे जाये। कभी-कभी प्रश्न हमें विचार की सीमाओं से भी परे खींच ले जाते हुए एक ऐसे सत्य की झलक दिखा देते हैं जिसे केवल जिया जा सकता है।

हालांकि, ये असाधारण रास्ते हमें प्रश्नों की मौजूदगी से प्यार करने के लिए उकसाते हैं। इनसे हम अज्ञात की अशांत छाया, हल की जाने वाली और दरकिनार की जा सकने वाली समस्याओं का स्वागत करना सीख सकते हैं।

यह विचार केवल सुविचारित प्रश्न पूछने के बारे में नहीं है; यह उन्हें इस तरह से धारण करने के बारे में है जो हमें रूपांतरित कर दे। मानव मन अपनी परिवर्तनकारी शक्ति का पूरा उपयोग करे और तुरंत उत्तरों की खोज में नहीं भटके, बल्कि गहरी, सच्ची अंतर्दृष्टि की खोज में उतरे। प्रश्नों के साथ जीने वाला मन खोया हुआ नहीं होता; वह जागृत, जीवंत और अंतहीन रूप से विस्तृत होता रहता है। जैसा कि भौतिक विज्ञानी रिचर्ड फेनमैन ने कहा था, गलत उत्तरों की अपेक्षा किये बिना जाने जीना कहीं अधिक दिलचस्प होता है।❑

हफ़्ते में सिर्फ़ चार दिन काम के आए कई फ़ायदे सामने

❑

ऑफिस में कितने घंटे काम किया जाय इस पर अभी देश में बहस छिड़ी हुई है। इसी मुद्दे पर विमर्श करता आलेख। सं.

❑

सोफ़िया बेटिज़ा

पदनाम,बीबीसी वर्ल्ड सर्विस

हफ़्ते में पांच दिन काम और फिर वीकेंड का मज़ा। लेकिन अगले सप्ताह फिर काम की उसी पुरानी दुनिया में लौटना। क्या हो जब ऐसा करने की नौबत न आए?

नेचर ह्यूमन बिहेवियर नाम के एक जर्नल में प्रकाशित एक अहम अध्ययन में कहा गया है कि कामकाजी सप्ताह को चार दिन कर देने से लोगों की सेहत में उल्लेखनीय सुधार दिखा है। इससे लोगों की ख़ुशी में भी इज़ाफ़ा देखा गया। बोस्टन कॉलेज के रिसर्चरों ने अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, आयरलैंड और न्यूज़ीलैंड की 141 कंपनियों के कर्मचारियों में बर्नआउट, नौकरी से संतुष्टि, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य जैसे पहलुओं का अध्ययन किया। इस रिसर्च की प्रमुख लेखिका वेन फ़ैन ने बीबीसी को बताया, हमने कर्मचारियों में बेहतरी देखी। कंपनियों का उत्पादन और राजस्व दोनों बढ़ा। ये ट्रायल अब ख़त्म हो गया है, लेकिन इसमें शामिल 90 फ़ीसदी कंपनियों ने सप्ताह में चार दिन काम करने को जारी रखने का फ़ैसला किया है।''

इससे पहले भी कर्मचारियों पर कम कामकाजी दिनों के असर के बारे में अध्ययन हुए हैं। बोस्टन कॉलेज के अध्ययन में भी पहले के उन्हीं नतीजों की पुष्टि हुई जिनमें ये कहा गया था कि हफ़्ते में कम दिन काम करने से कर्मचारियों में बेहतरी देखी जाती है। कम वर्किंग डे बेहतर स्वास्थ्य, संतुलित जीवन और कुल मिलाकर ज़्यादा संतुष्टि देते हैं। एक अन्य हालिया अध्ययन के मुताबिक़ लंबे समय तक काम करने से दिमाग़ की संरचना बदल सकती है।

कम कामकाजी दिनों के इतने फ़ायदे हैं, तो हफ्ते में कम काम करने से हमें किसने रोका है?

चीन अपने '996' वर्क कल्चर के लिए जाना जाता है। इसके तहत कर्मचारी सुबह नौ बजे से रात नौ बजे तक हफ्ते में छह दिन काम करते हैं। भारत के तेज़ी से बढ़ते टेक्नोलॉजी और

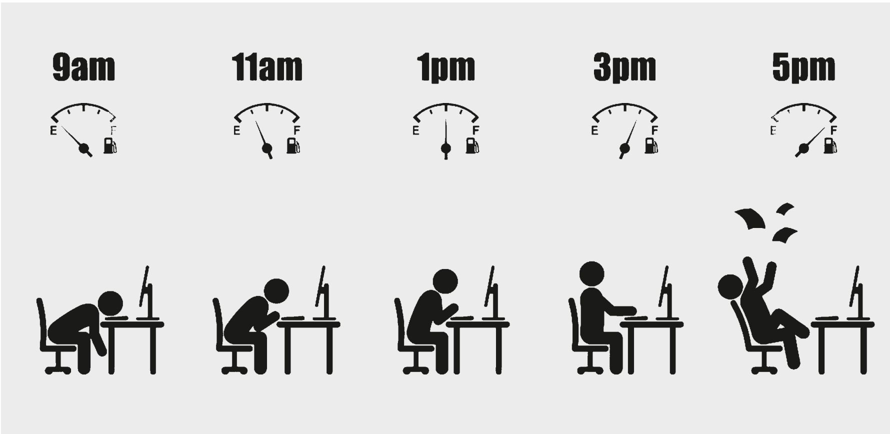

फ़ाइनेंस सेक्टर में भी कर्मचारियों को अक्सर लंबे और अनियमित घंटे काम करने का दबाव झेलना पड़ता है ताकि वैश्विक मांगें पूरी हो सके।

प्रोफेसर वेन फ़ैन कहती हैं, चीन, भारत, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में काम के लंबे घंटे को गर्व की निशानी माना जाता है। वह कहती हैं, ''जापान में तो बग़ैर पैसा दिए ओवरटाइम इतना आम है कि वहां 'काम से मौत' के लिए एक ख़ास शब्द है- करोशी। प्रोफ़ेसर फ़ैन कहती हैं, जापान में काम सिर्फ़ काम नहीं है। यह लगभग एक सामाजिक अनुष्ठान जैसा है।''

जापान के लेबर मार्केट और वर्क कल्चर विशेषज्ञ हिरोशो ओनो कहते हैं, ''लोग समय से पहले दफ़्तर पहुंचते हैं और देर तक रुकते हैं. भले ही कोई काम न हो लेकिन प्रतिबद्धता दिखाने के लिए लोग दफ्तर में ज़्यादा देर तक रुकते हैं। यह एक तरह से परफ़ॉर्मिंग आर्ट जैसा है। जैसे मार्शल आर्ट्स में एक तय तरीक़ा होता है, ये वैसा ही है।'' वह बताती हैं, ''जापान की सामूहिक संस्कृति इसे बढ़ावा देती है। यहां 'फ़्री राइडर' को लेकर बहुत बदनामी होती है। अगर कोई व्यक्ति शुक्रवार की छुट्टी लेने लगे तो बाकी सोचते हैं कि 'इन्हें आज काम से छुटकारा क्यों मिल रहा है? हैरानी की बात यह है कि जापान में क़ानूनी तौर पर मिलने वाली सहूलियतों का भी लोग अक्सर इस्तेमाल नहीं करते। अक्सर लोग पितृत्व अवकाश भी नहीं लेते। पुरुष एक साल तक की छुट्टी ले सकते हैं, लेकिन बहुत कम लोग ऐसा करते हैं। वे चाहते हैं कि उनके सहकर्मियों को असुविधा न हो।''

फिर भी प्रोफेसर वेन फ़ैन मानती हैं कि उन्होंने जो ट्रायल किए हैं, उनसे काम को लेकर पारंपरिक सोच वाले देशों में भी बदलाव दिखने लगा है। आइसलैंड में अब लगभग 90 फ़ीसदी लोग कम घंटे काम करते हैं। उन्हें अपने वर्किंग वीक को छोटा करने का अधिकार है। दक्षिण अफ़्रीका, ब्राज़ील, फ़्रांस, स्पेन, डोमिनिकन रिपब्लिक और बोत्सवाना जैसे कई देशों में इस तरह के ट्रायल हो चुके हैं। इस साल की शुरुआत में टोक्यो ने सरकारी कर्मचारियों के लिए चार दिन के सप्ताह का ट्रायल शुरू किया। दुबई ने भी हाल ही में सरकारी कर्मचारियों के लिए 'समर इनिशिएटिव' के तहत ऐसा ही कार्यक्रम शुरू किया। वहीं अक्टूबर 2025 से दक्षिण कोरिया की 67 कंपनियों में साढ़े चार दिन के वर्किंग वीक का ट्रायल करेगा।

. फोर डे वीक ग्लोबल की सीईओ कैरेन लोवे कहती हैं, ''कोविड के बाद से ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को लगता है कि उनका काम और ज़िंदगी का तालमेल नहीं बैठ रहा है। अब इस ट्रेंड को उलट नहीं सकते।'' उनका संगठन ब्राज़ील से लेकर नामीबिया और जर्मनी तक दुनिया भर की कंपनियों को चार दिन के वर्क मॉडल का ट्रायल कराने में मदद करता है।

उनकी सबसे बड़ी सफलता की कहानियों में से एक है अमेरिका के कोलोराडो प्रांत के 'सिटी ऑफ़ गोल्डन' का पुलिस विभाग, जिसमें 250 कर्मचारी हैं। चार दिन का वर्किंग वीक लागू करने के बाद वहां ओवरटाइम का काम लगभग 80 फ़ीसदी कम हो गया है और इस्तीफ़ों की संख्या आधी रह गई।

लोवे कहती हैं, अगर यह मॉडल उस पुलिस विभाग में काम कर सकता है, जहां अफ़सर गश्त करते हैं और आपात स्थितियों का सामना करते हैं तो यह कहीं भी काम कर सकता है।'' वह कहती हैं, '' जब हमने 2019 में पहला ट्रायल शुरू किया था तो सिर्फ़ कुछ ही कंपनियां इसमें दिलचस्पी ले रही थीं. अब इसमें दिलचस्पी लेने वाली कंपनियों की संख्या हज़ारों में है। छोटे वर्किंग वीक के फ़ायदे सबूत के साथ मौजूद हैं। अगर कमी है तो सिर्फ़ समझ की।

लोवे कहती हैं कि एक आम ग़लतफ़हमी यह है कि छोटे वर्किंग वीक से प्रोडक्टिविटी घट जाती है। लेकिन

उनका कहना है कि अक्सर यह उल्टा साबित हुआ है। 2019 में, माइक्रोसॉफ़्ट जापान ने चार दिन के वर्किंग वीक का ट्रायल किया और पिछले साल की तुलना में प्रति कर्मचारी बिक्री में 40 फ़ीसदी की बढ़ोतरी देखी गई। हालांकि, कंपनी ने इस बदलाव को स्थायी रूप से लागू नहीं किया।

लोवे का कहना है कि बड़ी कंपनियों के लिए यह बदलाव कहीं अधिक जटिल होता है, क्योंकि उनके कई विभाग होते हैं और कर्मचारी अलग-अलग देशों और टाइम ज़ोन में काम करते हैं।

प्रोफ़ेसर फ़ैन की स्टडी में प्रोडक्टिविटी बरक़रार रही क्योंकि कंपनियों ने लो-वैल्यू काम घटा दिए। बेवजह की मीटिंग्स की जगह फ़ोन कॉल या मैसेज का इस्तेमाल किया गया।

लोवे कहती हैं, ''एक और ग़लतफ़हमी यह है कि अगर वर्किंग वीक छोटा किया तो कर्मचारियों को कम काम की भरपाई के लिए ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी।'' वह कहती हैं, मामला पांच दिन का काम चार दिन में ही करवाने का नहीं है, बल्कि फ़िज़ूलखर्ची कम करने का है। अब जब एआई कई काम कर रहा है तो हम इन अक्षम प्रक्रियाओं को और आसानी से पहचान सकते हैं।

केपटाउन के स्टेलनबॉश यूनिवर्सिटी में काउंसलिंग सेंटर के डायरेक्टर चार्ल डेविड्स के लिए चार दिन का वर्किंग वीक महज़ कामकाजी ढांचे में बदलाव नहीं, बल्कि लाइफ़लाइन थी। उनकी टीम 30 हज़ार से अधिक स्टूडेंट्स को मानसिक स्वास्थ्य सहायता सेवा मुहैया कराती है।

लोवे कहती हैं, ''एक और ग़लतफ़हमी यह है कि अगर वर्किंग वीक छोटा किया तो कर्मचारियों को कम काम की भरपाई के लिए ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी।'' वह कहती हैं, मामला पांच दिन का काम चार दिन में ही करवाने का नहीं है, बल्कि फ़िज़ूलखर्ची कम करने का है। अब जब एआई कई काम कर रहा है तो हम इन अक्षम प्रक्रियाओं को और आसानी से पहचान सकते हैं।

बदलाव से पहले लोग बर्नआउट के शिकार हो रहे थे। वह बताते हैं, ''दफ़्तर से ग़ैर हाज़िर रहने के मामले बहुत ज़्यादा थे। लोग लगातार बीमार बताकर छुट्टी ले रहे थे। ऐसा आलस के कारण नहीं हो रहा था। वे सर्वाइवल मोड में थे। उनकी ऊर्जा पूरी तरह ख़त्म हो चुकी थी।

दक्षिण अफ़्रीका सबसे ज़्यादा मानसिक परेशानी वाले लोगों का देश है। चार्ल की 56 लोगों की टीम लगातार ट्रॉमा से जूझने, बहुत ज़्यादा वर्क लोड और सीमित संसाधनों की वजह से मानसिक रूप से थक चुकी थी। सीनियर लीडर के विरोध और अपनी टीम के संदेहों के बावजूद उन्होंने चार दिन के वर्किंग वीक का पायलट प्रोजेक्ट शुरू किया। वह कहते हैं, उन्हें लग रहा था कि ये कभी कारगर नहीं हो सकता। लेकिन इसने काम किया। इसके नतीजे अद्भुत थे।'' ट्रायल से पहले साल में टीम के लोगों ने 51 बार बीमारी की वजह से छुट्टी ली थी। लेकिन चार दिन के वर्किंग वीक की वजह से ये घटकर सिर्फ़ चार रह गईं। स्टाफ़ ने बेहतर नींद, अधिक व्यायाम और शौक पूरे करने का अवसर मिलने की बात कही। वह कहते हैं, उन्होंने घरेलू काम निपटाने के बजाय वीकेंड परिवार के साथ बिताया।''

चार्ल ने कहा, मुझे लगा था कि ज़्यादातर लोग अतिरिक्त समय में निजी प्रैक्टिस करके अधिक पैसा कमाएंगे। लेकिन सिर्फ़ एक व्यक्ति ने ऐसा किया। चार्ल का मानना है कि कर्मचारियों की बेहतर सेहत ने उन्हें अपने काम में और सक्षम बना दिया। वह कहते हैं, उनका काम में ध्यान बढ़ गया। वे इसके प्रति ज़्यादा संवेदनशील भी हो गए। स्टूडेंट्स को अच्छी देखभाल मिलने लगी।

प्रोफ़ेसर वेन फ़ैन कहती हैं, ''फिर भी इस तरह का बदलाव हर जगह संभव नहीं है। किसी देश की औद्योगिक संरचना और उसका विकास स्तर इसमें मायने रखता है। कम कौशल वाले, शारीरिक मेहनत पर आधारित काम की री-स्ट्रक्चरिंग मुश्किल है। इन क्षेत्रों में नियोक्ता टाइमिंग को री-शेड्यूल करने के बजाय ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने पर ज़ोर देते हैं।

वह कहती हैं, यह बदलाव अलग-अलग क्षेत्रों में काम कर सकता है लेकिन मैं चार दिन के वर्किंग आवर को कोई जादुई हल के तौर पर पेश नहीं करना चाहूंगी। यह हर जगह लागू होने वाला फॉर्मूला नहीं है।''

कैरेन लोवे का मानना है कि बदलाव की मांग अब रफ़्तार पकड़ रही है। वह कहती हैं, कोविड ने हमें पहला टर्निंग पॉइंट दिया। मुझे उम्मीद है कि अगला टर्निंग पॉइंट चार दिन का वर्किंग वीक होगा।''❑

भारत में खाद्य उत्पादन: एक विवेचन

❑

कृषि प्रसार विशेषज्ञ प्रो. कल्ला देश में 'हरित क्रांति' का नेतृत्व करने वालों में प्रमुख वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन की जन्मशती पर अब तक के कृषि विकास पर एक त्वरित टिप्पणी कर रहे हैं। सं.

❑

डॉ. प्रकाश नारायण कल्ला

पिछली सात अगस्त को जाने-माने वैज्ञानिक और प्रशासक एम. एस. स्वामीनाथन की जन्म शताब्दी पर भारत सरकार ने उस वैज्ञानिक प्रशासक पर सौ रुपये का एक सिक्का जारी किया और देशवासियों की तरफ से उनके महान काम के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। स्वामीनाथन का भारत में हरित क्रांति लाने में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनकी जनमशती का यह मौका देश के खाद्य उत्पादन के अतीत और भविष्य पर चिंतन करने का अवसर भी देता है।

1960 के दशक में शुरू की गई हरित क्रांति भारत के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण मोड़ों में से एक और वैश्विक कृषि परिवर्तन में एक मील का पत्थर मानी जाती है। यह इस बात का सशक्त उदाहरण है कि जब किसानों के साथ घनिष्ठ साझेदारी में रणनीतिक बना कर विज्ञान को खेत तक लाया जाता है तब अभूतपूर्व नतीजे हासिल किये जा सकते हैं। यह स्वामीनाथन जैसे लोगों ने कर दिखाया।

आज़ादी के तुरंत बाद खाद्यान्न आत्मनिर्भरता सबसे ज़रूरी और बुनियादी चुनौती थी जिसका सामना भारत और उसके 33 करोड़ लोगों ने किया। अभी उस पीढ़ी के लोग मौजूद है जिन्हें वह समय याद है जब अमेरिका से खाद्यान्न, खासकर गेहूं, के अपने बंदरगाहों पर आने का किस बेताबी से इंतज़ार हुआ करता था। अमेरिकी खाद्य सहायता पहल के तहत पीएल-480 कार्यक्रम पर भारी निर्भरता ने एक ऐसे राष्ट्र की भयावह तस्वीर पेश की थी जहां 70 प्रतिशत से ज़्यादा आबादी कृषि में लगी हुई थी, लेकिन अपना पेट भरने में असमर्थ थी। मगर देश ने हरित क्रांति का चमत्कारिक काम कर दिखाया।

1960 के दशक के मध्य में यह महत्वपूर्ण बदलाव आया। हरित क्रांति मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में शुरू हुई। इसके बाद उच्च उपज देने वाली रतुआ-रोधी गेहूं की किस्मों का प्रचलन, सिंचाई के उन्नत साधन, कीट प्रबंधन और उत्पादकता पर विशेष ध्यान देने की नवाचारों की एक शृंखला आई। इसका प्रभाव परिवर्तनकारी साबित हुआ। गेहूँ का उत्पादन 1960 के दशक के मध्य में 12 मिलियन टन से बढ़कर 1970-71 तक 21 मिलियन टन हो गया और 1990 के दशक के अंत तक 76 मिलियन टन तक पहुँच गया। चावल की पैदावार 1960 के दशक में लगभग दो टन प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 1990 के दशक के मध्य तक लगभग छह टन प्रति हेक्टेयर हो गई। और 1980 के दशक के अंत तक हमारा देश खाद्य सहायता पर निर्भर आयातक से आत्मनिर्भर शुद्ध निर्यातक बन गया।

आज भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा खाद्य उत्पादक होने का गर्व कर सकता है। वह अनाज के मामले में आत्मनिर्भर है और लगभग 52 बिलियन डॉलर मूल्य के कृषि उत्पादों का निर्यात करता है।

हरित क्रांति न केवल एक वैज्ञानिक और विकासात्मक विजय थी, बल्कि यह एक सामाजिक-आर्थिक और भू-

राजनीतिक सफलता भी थी। प्रत्येक 7 अगस्त को हम इसी का जश्न मनाते हैं। यह हमारी निर्भरता से नेतृत्व की ओर, अभाव से अधिशेष की ओर की यात्रा है। यह आत्म-निर्भरता, संप्रभुता और विज्ञान एवं किसानों के बीच साझेदारी की शक्ति का उत्सव है।

लेकिन उत्सव का यह क्षण चिंतन का भी समय है। जहाँ हरित क्रांति नाटकीय लाभ लाई, वहीं अब अगली क्रांति के लिए समावेशिता, विविधीकरण, लाभप्रदता और स्थिरता पर ध्यान देने की जरूरत है। भारतीय कृषि की रीढ़ अब भी छोटे किसानों के खेतों में निहित है। यहां 80 प्रतिशत से अधिक खेत मिश्रित फसल, कम लागत, कम उत्पादन प्रणाली वाले हैं, जो अत्यधिक असुरक्षित माने जाते हैं। यह अब भी जनता द्वारा उत्पादन की कहानी है, बड़े पैमाने पर उत्पादन की नहीं।

विडंबना यह है कि इसी 7 अगस्त को अमेरिका द्वारा प्रमुख कृषि निर्यातों सहित भारतीय वस्तुओं पर 25 प्रतिशत पारस्परिक शुल्क लगाने का भी दिन था। यह ऐतिहासिक रूप से मार्मिक है: वही देश जिसने कभी भारत को खाद्य सहायता प्रदान की थी, अब उसे एक व्यापार प्रतिस्पर्धी और वैश्विक खाद्य नेता के रूप में देखता है। यह शुल्क भारतीय किसानों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ा खतरा है। समुद्री भोजन, चावल और मसालों जैसे निर्यातोन्मुखी उत्पाद – जो अक्सर छोटे पैमाने के उत्पादकों द्वारा संचालित होते हैं – को रद्द किए गए ऑर्डर, कीमतों में गिरावट और रसद संबंधी अराजकता का जोखिम उठाना पड़ा। उदाहरण के लिए, ओडिशा का झींगा निर्यात, जिसका मूल्य लगभग 170 मिलियन डॉलर है और जिसका 90 प्रतिशत से अधिक अमेरिकी बाज़ार से जुड़ा है, उच्च जोखिम में है। यह कहानी कई वस्तुओं – बासमती और गैर-बासमती चावल, मसालों आदि – के मामले में दोहराई जाती है। अचानक टैरिफ का झटका हज़ारों लोगों की आजीविका को खतरे में डाल सकता है।

समष्टि आर्थिक स्तर पर, अनुमानित 7-8 बिलियन डॉलर का वार्षिक नुकसान भारत के सकल घरेलू उत्पाद के 0.2 प्रतिशत से भी कम है, एक ऐसा प्रभाव जिसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था शायद झेलने में सक्षम हो। लेकिन छोटे पैमाने के उत्पादकों के लिए, जिनकी जोखिम लेने की क्षमता पहले से ही कम है, परिणाम कहीं अधिक गंभीर हो सकते हैं। इन किसानों और कृषि प्रणालियों के पास आय हानि को झेलने के लिए सीमित संसाधन हैं।

छह दशकों में कृषि और व्यापार गतिशीलता में भारत की यात्रा असाधारण रही है। कभी दुनिया में खाद्य सहायता प्राप्त करने वाले सबसे बड़े देशों में से एक, जिसकी लगभग 25 प्रतिशत अनाज आपूर्ति विदेशी सहायता से आती थी, अब भारत एक प्रमुख खाद्य उत्पादक, निर्यातक और वैश्विक व्यापार वार्ताओं में एक विश्वसनीय आवाज़ है। कृषि, जो भारत की कमजोरी का प्रतीक था, अब उसकी आर्थिक और कूटनीतिक ताकत का आधार बन गया है।

7 अगस्त की दोधारी सच्चाई यही है: यह दिन एमएस स्वामीनाथन को श्रद्धांजलि देने और हरित क्रांति व खाद्यान्न आत्मनिर्भरता का जश्न मनाने का दिन है, और यह याद दिलाने का भी कि खाद्य संप्रभुता और खाद्य कूटनीति आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं। साठ साल पहले भारत अकाल से बचने के लिए खाद्य सहायता पर निर्भर था। आज वह दुनिया के सबसे बड़े खाद्य निर्यातकों में से एक होने के नाते अपने पूर्व खाद्य दाता के साथ 25 प्रतिशत टैरिफ पर बातचीत कर रहा है।

हरित क्रांति पर पुनर्विचार का मतलब केवल बेहतर विकास और बेहतर बातचीत करना नहीं होना चाहिए। भारत अब अनाज के जहाजों का इंतज़ार नहीं करता, बल्कि बदलती भू-राजनीति और आर्थिक संरक्षणवाद की दुनिया में, देश को अभी भी अशांत जलमार्गों से निपटना होगा। इस बार क्रांति भोजन सुरक्षित करने के लिए नहीं, बल्कि अपने किसानों के लिए उचित सौदा सुनिश्चित करने के लिए होगी।❑

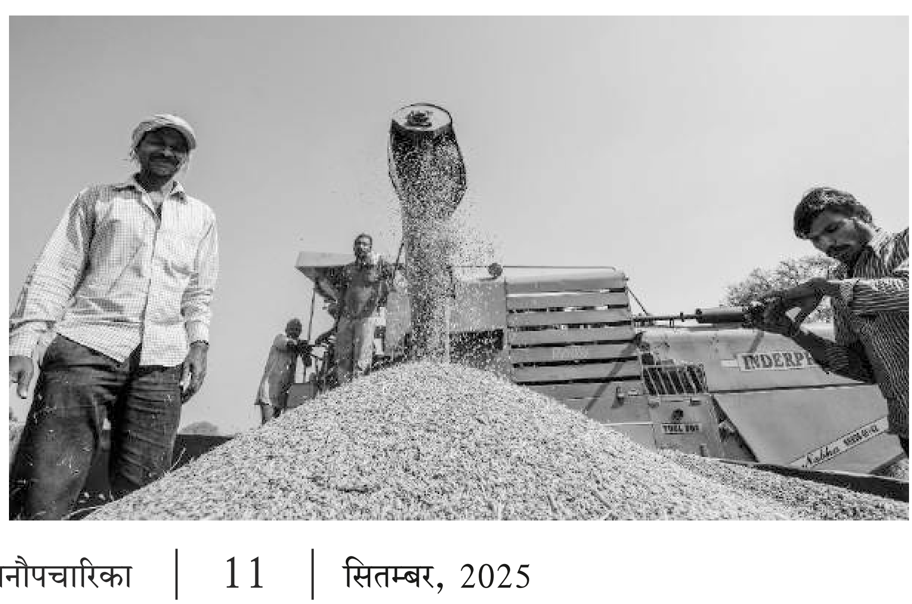

हम आखिर बहस क्यों करते हैं!

मौजूदा समय में विमर्श की जगह बहस का बोलबाला हो चला है, जिसमें लोग अपने को सही साबित करने में शालीनता की सीमाएं पार कर जाने में वक़्त नहीं लगाते। इसी पर संजीदा और वरिष्ठ पत्रकार आलोक ब्रजनाथ की यह टिप्पणी है। सं.

❑

आलोक ब्रजनाथ

❑

ग्रेग किंग ने कहा था – किसी मूर्ख से बहस मत करो। वह तुम्हें अपने स्तर तक गिरा देगा और तुम्हें अपने अनुभव से पीटेगा। मार्क ट्वेन ने भी कहा है – किसी मूर्ख से कभी बहस मत करो, क्योंकि देखने वाले अंतर बताने में सक्षम नहीं हो सकते।

पाउलो कोएल्हो ने कहा है – साधारण चीजें ही सबसे असाधारण होती हैं, और सिर्फ बुद्धिमान लोग ही उन्हें देख सकते हैं। इसी प्रकार डेल कार्नेगी ने एक बार लिखा था – हर देश खुद को और देशों से बेहतर समझता है। इसी से देशभक्ति आती है – और युद्ध भी। इसे मैं इस तरह रूपांतरित करता हूं – हर व्यक्ति खुद को अन्य व्यक्तियों से बेहतर समझता है। इसी से आत्ममुग्धता आती है – और शत्रुता भी।

मूर्खों और मूर्खता पर आचार्य चाणक्य ने विस्तृत विचार किया है –

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टास्त्रीभ-रणेन च। दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितो-ऽप्यवसीदति।।

अर्थात मूर्ख शिष्य को पढ़ाने पर, दुष्ट स्त्री के साथ जीवन बिताने पर तथा दुखियों के बीच में रहने पर विद्वान व्यक्ति भी दुखी हो ही जाता है।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्ट च खलु यौवनम्। कष्टात्कष्टतरं चैव परगृहेनिवासनम् ।।

यानि मूर्खता कष्ट है, यौवन भी कष्ट है, किन्तु दूसरों के घर में रहना कष्टों का भी कष्ट है।

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः। भिनत्ति वाक्यशूलेन अदृश्ययं कण्टकं यथा ।।

मूर्ख व्यक्ति को दो पैरों वाला पशु समझ कर त्याग देना चाहिए, क्योंकि वह अपने शब्दों से शूल के समान उसी तरह भेदता रहता है, जैसे अदृश्य कांटा चुभ जाता है।

मूर्खाः यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् । दाम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्री स्वयमागता।।

जहां मूर्खों का सम्मान नहीं होता, अन्न का भण्डार भरा रहता है और पति-पत्नी में कलह नहीं हो, वहां लक्ष्मी स्वयं आती है।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्मा-ज्जातमृतो वरः। मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्।।

मूर्ख पुत्र के चिरायु होने से मर जाना अच्छा है, क्योंकि ऐसे पुत्र के मरने पर एक ही बार दुख होता है, जिन्दा रहने पर वह जीवन भर जलाता रहता है।

मुझे मूर्खों के विषय में संत ज्ञानेश्वर का कथन भी बेहद तार्किक और प्रभावी लगता है – मूर्खों से बहस करके कोई बुद्धिमान नहीं कहला सकता। मूर्ख पर विजय प्राप्त करने का एक ही तरीका है कि उसकी तरफ ध्यान ही न दिया जाए।

लेकिन इसका क्या करें जब मूर्ख बाल हठ कर हमें अपने पाश में बांध ले?

लाओ त्से ने कहा था – मूर्ख व्यवहार के लिए भी समझदारी से जवाब दो।

तब मन में प्रश्न उठता है कि हम आखिर बहस क्यों करते हैं? 'फेसबुक' पर एक पेज मौजूद है 'जीवन दर्शन'। वह इस विषय की समग्र पड़ताल करता है। उसी को शब्दशः पढ़ लीजिए –

खुद को उलझाए रखने के हजारों बहाने हो सकते हैं। कारण, कोई न कोई कुछ न कुछ ऐसा कर ही देगा, जो हमें पसंद नहीं आएगा। पर बात–बात में बहस करके भी सही समाधान हो जाए, क्या इस बात की गारंटी है? विशेषज्ञों के अनुसार हमारी 99 प्रतिशत बहसें न सिर्फ व्यर्थ होती हैं, उनका कोई नतीजा भी नहीं निकलता। ऐसे में छोटी – छोटी बातों पर रिश्तों और मन की शांति को भंग करना कितना सही है!

कहावत है कि मूर्ख से बहस करना यही साबित करता है कि मूर्ख एक नहीं दो हैं। घर हो या बाहर, बहस शुरू होने के कई कारण हो सकते हैं। आमतौर पर ऐसा तब होता है, जब दोनों ही पक्ष खुद को पीड़ित और सही मान रहे होते हैं। बहस करना एक नकारात्मक भाव है। ऐसे में उसी नकारात्मकता में डूबे रहना, मन को अशांत करता है, काम में देरी होती है और रिश्तों में दूरी बढ़ने लगती है।

प्रभावी बातचीत के क्षेत्र में लंबा अनुभव रखने वाले रॉब केंडल कहते हैं, 'छोटी–छोटी बातों पर बहस करने लगना समझदारी की कमी है। उनकी पुस्तक 'ब्लेमस्टॉर्मिंग : वाई कन्वर्सेशंस गो रॉन्ग एंड हाउ टु फिक्स देम?' इसी मसले पर बात करती है। उनके अनुसार, 'बहस बढ़ने पर दोनों पक्ष समाधान तलाशने की जगह एक दूसरे पर आरोप लगाते हैं। दोनों ही सही साबित होना चाहते हैं। कोई भी अपने किन्तु–परंतु छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता।'

बहस से बचने का आशय यह नहीं कि आप गलत बात भी मानें या अपने सम्मान से समझौता करें। बस, बहस करते समय फोकस समाधान पर रखें। अधिकतर मामलों में समाधान दोनों पक्षों के समझौते से निकलता है। कई बार विवाद को सुलझाने का रास्ता जीत में नहीं हार में छिपा होता है।

रिलेशनशिप एक्सपर्ट डॉ. जॉन गोटमैन कहते हैं, 96 प्रतिशत मामलों में बहस के शुरुआती तीन मिनट बता देते हैं कि बहस करना कितना सार्थक रहेगा। शुरुआत में की गई विवेकपूर्ण बातचीत बहस को बढ़ने नहीं देती।

'द आर्ग्यूमेंटेटिव इंडियन: राइटिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री, कल्चर एंड आइडेंटिटी' में अमर्त्य सेन लिखते हैं, 'यदि दूसरे असहमति व्यक्त करें, तो नाराज न हों। सबके पास दिल है और हरेक का अपना झुकाव। उनका सही हमारा गलत है और हमारा सही उनका गलत।'

ब्लॉगर सेन सर्जियो कहते हैं, 'बहस से बचने के लिए चार बातें सोचें, पहला क्या जरूरी है कि हमेशा आप सही हों, क्या उस मुद्दे या व्यक्ति को पकड़े रखना जरूरी है, कहीं जल्दबाजी में राय तो नहीं बना रहे और बहस का असर कहां और कितना लंबा पड़ेगा?

कई बार बहस की बुनियाद ही गलत तथ्यों पर खड़ी होती है। चूंकि आप नहीं चाहते कि आप गलत साबित हों, इसलिए उसी दिशा में तर्क गढ़ते चले जाते हैं। बेहतर है कि पहले अपने पक्ष को बेहतर तरीके से परख लें।

दूसरे पक्ष को सुनने का अर्थ यह नहीं है कि उनकी सभी बातों से सहमत हो जाएं। पर यह समझना भी जरूरी है कि दूसरा पक्ष किस तस्वीर को दिखाना चाह रहा है। उनके डर, बेचैनी, हित–अहित और गुस्से को समझें।

गुस्से में न बोलें। बोलते समय खुद को व दूसरे को एक–दो मिनट का ब्रेक दें। सम्मान से बात करें। अधिकतर बहस में समाधान दोनों पक्षों की ओर से किए गए समझौते से निकलता है। सम्मान से बात करेंगे, तो रिश्ते आगे भी बेहतर रहेंगे। व्यक्ति की जगह समस्या पर बात करें। अपनी भी गलती स्वीकारने से पीछे न हटें।

लेकिन क्या ऐसा आमतौर पर होता है? लोग समझते हैं? जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था – जो अपना दिमाग नहीं बदल सकते, वे कुछ भी नहीं बदल सकते। इसीलिए उलझो मत और उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो। ❑

अनिल बोर्दिया की याद

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के बनने से लेकर उसके देश की अग्रणी स्वयंसेवी संस्था के रूप में परवान चढ़ने के पीछे अन्यों के साथ प्रख्यात शिक्षाविद्, प्रशासक और सामाजिक कार्यकर्ता अनिल बोर्दिया का निरंतर सहयोग रहा। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें 'पद्मभूषण' के नागरिक अलंकरण से सम्मानित किया गया। यूनेस्को ने 1999 में उन्हें शैक्षिक विकास में असाधारण योगदान के लिए प्रतिष्ठित 'एविसेना स्वर्ण पदक' प्रदान कर सम्मानित किया। इससे पहले 1996 में, उन्हें बैंकॉक स्थित यूनेस्को के एशिया-प्रशांत शैक्षिक नवाचार विकास केंद्र का फेलो चुना गया था। मानव संसाधन विकास मंत्रालय में शिक्षा सचिव के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान, उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के निर्माण और कार्यान्वयन का मार्गदर्शन किया, जिससे बुनियादी शिक्षा और वयस्क साक्षरता की ओर स्पष्ट बदलाव लाने में मदद मिली। राजस्थान में उनके नेतृत्व में प्राथमिक शिक्षा का 'लोकजुम्बिश' कार्यक्रम चला जिसने इस राज्य को साक्षरता में देश के औसत के बराबर लाने में प्रमुच भूमिका निबाही। बाद में उन्होंने 11-20 वर्ष आयु वर्ग के किशोरों की समग्र शिक्षा और विकास के लिए 'दूसरा दशक' कार्यक्रम चलाने के लिए 'फाउंडेशन फॉर एजुकेशन एंड डेवलपमेंट की स्थापना की जो अब भी बेहतरीन काम कर रहा हैतथा 'दूसरा दशक' द्वारा किए गए अग्रणी कार्य ने झारखंड, बिहार और उत्तर प्रदेश सहित अन्य राज्यों के कई गैर-सरकारी संगठनों को इसी तरह के कार्य करने के लिए प्रेरित किया है।

2 सितंबर 2012 में निधन हो गया मगर उनके काम आज भी शिक्षा के काम में लगे लोगों को मार्गदर्शन और प्रेरणा देते हैं। उनकी 11वीं पुण्यतिथि पर बोर्दियाजी के साथ तथा उनके व रमेश थानवी के जरिए समिति से जुड़े रहे पुराने साथी सुधेन्दु पटेल इस आलेख में उनको याद कर रहे हैं। सं.

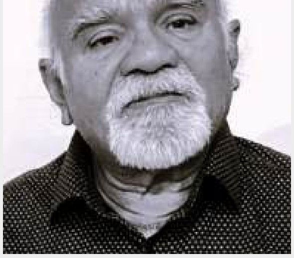

❑ **सुधेन्दु पटेल**

महात्मा गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम सुझाते हुए बड़ों की तालीम के बारे में कहा था कि मैं शिक्षा का सबसे पहला अर्थ यह करता हूं कि उन्हें जबानी तौर पर, यानी सीधी बातचीत के जरिये सच्ची राजनीतिक तालीम दी जाय।

यह सुझाव गांधी ने 1945 में दिया था। किन्तु यह आकस्मिक नहीं था कि आजादी के तीन दशकों तक गांधी का सुझाव हमारा राष्ट्रीय संकल्प नहीं बन सका था। इस दिशा में पहली बार जनता सरकार ने कदम बढ़ाकर राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम घोषित किया था। जिसके तहत् पांच वर्ष में दस करोड़ लोगों को साक्षर व चेतना संपन्न करने के लक्ष्य का राजनीतिक संकल्प लिया गया था।

यह भी सुखद संयोग ही रहा था कि इसे क्रियान्वित करने वाले प्रमुख शिल्पी रहे थे शिक्षा के मार्फत समाज की तस्वीर बदलने के प्रति आस्थावान भारत सरकार के तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा सचिव नवाचारों के पुराधा सर्वप्रिय अनिल बोर्डिया। जीवन की विरल यादों में उतरने के लिए अतीत में जाना ही पड़ता है, और यह भी कि व्यक्ति हो या काल खंड न चाहते हुए भी स्वयं का उल्लेख स्वतः ही अनायास आ ही जाता है।

यह उस दौर की बात है जब मैं तरुणाई की रौ में देश में आमूलचूल

परिवर्तन का 'ब्लू प्रिन्ट' मन में संजोए दिवास्वप्न में खोया रहता था। एक ओर समाज परिवर्तन की हूक, वहीं दूसरी तरफ पत्रकारिता की बारादरी के चौखट पर प्रवेश की ऊहापोह का खिंचाव भी दिमाग पर तारी था। हालांकि तब कतई अनुमान नहीं था कि जुड़ने का जरिया जैविक–प्रेम से ही अंततः बनेगा ।

दरअसल हुआ यूं कि सातवें दशक के 'जयप्रकाश आंदोलन' के दौरान मठी गांधीवादियों के खेमे की सर्वोदयी आंदोलनकारी आशा भार्गव से संपर्क हुआ। जो 'जैविक – प्रेम' से होता हुआ कालांतर में जीवन पर्यन्त साथ रहने के संकल्प में अंततः परिणत हो ही गया। प्रेम–प्रपंच (संपूर्ण क्रांति का दौर) के दौरान मैं दैनिक सन्मार्ग की चाकरी के साथ–साथ आपातकाल में चर्चित भूमिगत पत्र 'रणमेरी' की चारभुजा टीम के सक्रिय सदस्य की भूमिका में था तो आशा नारायण देसाई की पत्रिका ' बुनियादी यकीन' सहित साहित्य के प्रसार में लगी हुई थी। अंततः आपातकाल की समाप्ति के बाद विवाह बंधन की 'सजा' संघर्ष स्वीकार कर ली थी।

एक विराट शून्य क्योंकि

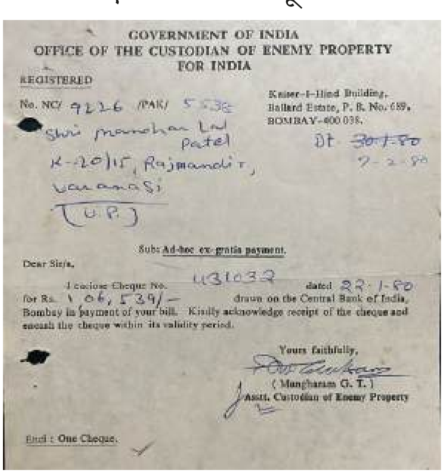

GOVERNMENT OF INDIA
OFFICE OF THE CUSTODIAN OF ENEMY PROPERTY
FOR INDIA

REGISTERED

No. NC/ 9226 /PAK/ 5538

Kaiser-i-Hind Building,
Ballard Estate, P. B. No. 689,
BOMBAY-400 038.

Shri Manohar Lal Patel
K-20/15, Rajmandir,
Varanasi
(U.P.)

Dt. ~~30-1-80~~ 7-2-80

Sub: Ad-hoc ex-gratia payment.

Dear Sir/s,

I enclose Cheque No. 431032 dated 22-1-80 for Rs. 1,06,539/- drawn on the Central Bank of India, Bombay in payment of your bill. Kindly acknowledge receipt of the cheque and encash the cheque within its validity period.

Yours faithfully,
(Mangharam G. T.)
Asstt. Custodian of Enemy Property

Encl : One Cheque.

बोर्दिया जी की बदौलत मिला मुआवजा

भविष्य के बारे में कोई सोच ही नहीं रही थी। हम राजनीति का धंधा क्या करते! अपने सूफी संत सरीखे नेता किशन पटनायक के आदेश पर विधायकी का टिकट वापस किया। अंततः पत्रकारिता की औघड़–डगर ही एकमात्र सहारा शेष बच रही थी। फिर दर–ब–दर का सिलसिला !

उतरती सर्दियों के उजले दिनों की आहट वाले किसी दिन जब कवि–संपादक सर्वेश्वर जी से दिल्ली में मिला तो उन्होने अनिल भाई के नाम चिट्ठी पकड़ा दी थी। लिखा आदरणीय बोर्डिया जी, युवा लेखक पत्रकार सुधेन्दु पटेल को आपके पास भेज रहा हूं। यह उदयपुर क्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा का काम करना चाहते हैं। इनकी समझ, लगन और मेहनत पर मुझे भरोसा ही नही एक अरसे से एक राजनीतिक सामाजिक कार्यकर्ता के नाते इन से मेरा स्नेह रहा है। महत्त्वपूर्ण विषयों पर 'दिनमान' में लिखते भी रहे हैं। आपातकाल में जेल भी काट आये हैं। इन जैसे युवक इस क्षेत्र में उपयोगी काम कर सकते हैं ऐसा मेरा विश्वास है।.यह संक्षिप्त परिचय है, थोड़ी बातचीत कर आप ज्यादा समझ जायेंगे।. यदि इन्हें इस काम में लगा दें तो इनका भला तो होगा ही इस काम को भी एक सही आदमी मिल जाएगा। आशा है. आप स्वस्थ होंगे। सादर आपका सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

मैं संकोचवश नहीं मिला, लेकिन नैसर्गिक अवसर अनायास आ टपका। यूं हुआ कि राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के राज्य संदर्भ केन्द्र के निदेशक रमेश थानवी से औचक भेंट का संयोग बना। उन्हें मैं समाजवादी मजदूर नेता जार्ज फर्नांडीज के साप्ताहिक 'प्रतिपक्ष' से जानता था क्योंकि मैं उसमें यदाकदा छपता भी रहता था, वे भी मेरे नाम से वाकिफ थे। सो मेरी मौजूदा स्थिति को समझते हुए रमेश जी सपारिश्रमिक कुछ काम सौंपने लगे।

संयोगात कि सालाना सम्मेलन का अवसर आ पहुंचा। राज्य में सक्रिय प्रौढ़ शिक्षण समितियों का यह सालाना समागम एक रचनात्मक उत्सव–सा

हुआ करता था जिसमें सामान्य कार्यकर्ताओं से लगायत जिला शिक्षा अधिकारियों तक की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य हुआ करती थी। उस अवसर पर अनौपचारिका के साथ- साथ सम्मेलन के एजेण्डा विषयक पाठ्य सामग्री का प्रकाशन भी हुआ करता था। उदारमना रमेश जी ने मुझ से भी लिखवाया। मैंने प्रौढ़ शिक्षा से मुक्ति की ओर: 'जनक' कौन बनेगा? आलेख लिखा। उस सम्मेलन में मंत्री से लगायत केन्द्र-राज्य के शैक्षिक अफसरों का जमघट हुआ करता था।

जाहिर है इस अभिनव आयोजन की मुख्य धुरी अनिल बोर्डिया ही हुआ करते थे। ऐसे में अपने उद्बोधन में बोर्डिया जी ने मेरे लेख को प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की मूल मंशा बताते हुए उसे अनिवार्यतः पढ़े जाने की पैरवी की। मेरा ग्राफ इतना बढ़ गया कि प्रायः सभी उसे पढ़कर और बिना पढ़े भी ठकुरसुहाती में मुझे आ-आकर बधाई देने लगे थे। मै छा गया था। मै स्वयं भी चकित था कि ऐसा क्या लिख दिया कि अनिल भाई प्रभावित हुए। सो अपने लेख का पुनरावलोकन किया ।

प्रौढ़ शिक्षा बुनियादी बदलाव का एक कारगर औजार है। महज भरमाने वाला नारा नहीं है. इस महत्वाकांक्षी आंदोलन के जो वाहक हैं, उनकी जिम्मेदारी मां की-सी हैं। जब हम किसी आदमी को अशिक्षा के अंधे कुएं से निकालते हैं उसे रोशनी का रास्ता बतलाते हैं तब हम एक नया इन्सान पैदा कर रहे होते हैं। उस नये इन्सान को उसके हक की जानकारी देना, उसके बाजुओं की असीम ताकत का सही उपयोग बतलाना, उसके मन में

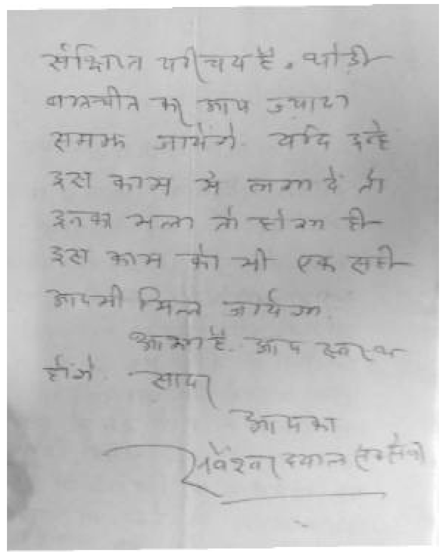
संक्षिप्त परिचय है। थोड़ी
बातचीत से आप ज्यादा
समझ जायेंगे। यदि इन्हें
इस काम में लगा दें तो
इनका भला तो होगा ही
इस काम को भी एक सही
आदमी मिल जायेगा।
आशा है आप स्वीकार
करेंगे। सादर
आपका
[illegible]

जानकारी की भूख पैदा करना, तपस्वी मन से ही संभव है। प्रौढ़ शिक्षा का काम तपस्या है। आदमी को उसके आदमीपन से साक्षात्कार करवाने का काम 'जनक' बनकर ही संभव है।

वंचितों में सही चेतना का विकास जानकारी के एकाधिकारवाद को तहस-नहस करके ही संभव है। शोषण के खिलाफ जूझने में साक्षरता की ताकत से बल मिलेगा। इस बात को चौपालों तक पहुंचाना होगा, खेतों की मेड़ों तक यह बात पहुंचानी होगी कि अपनी मुक्ति के लिए अज्ञान और अशिक्षा के खिलाफ उठो। समय की पुकार है। नया सवेरा लाने के लिए जुट जाओ।

अनिल भाई लोकतांत्रिक पद्धति को प्यार करते थे इसीलिए नेल्सन मंडेला सरीखे व्यक्ति से लेकर गांव के अमराराम तक से सहज भाव से मिल सकते थे। वे अंतःकरण से सबको साथ लेकर चलने की इच्छा रखते रहे। वे सतत जिज्ञासु बने रहने को तत्पर रहते थे। वे हर भूमिका में अपवादों में भी अपवाद रहे थे। उनमें ज्ञान का दंभ जरा भी नहीं था। मुझ पर वे बराबर कृपालु रहे थे। एक बड़े फासले के बावजूद ढेरों स्मृतियां हैं। जोधपुर में हुए सम्मेलन के बाद वे समिति से मुझे जोड़ना भी चाहते थे। उन्होंने रमेश जी को उलाहना भी दिया था लेकिन जब उन्हें पता चला था कि मैंने कहीं भी नौकरी के लिए आवेदन न करने का संकल्प लिया हुआ है। उन्होंने पल भर में रमेश जी से कहा था कि यदि हम उसे आमंत्रित करें तो... और मैं बिना आवेदन के समिति के बुलावे पर जुड़ गया था।

एक और प्रसंग स्मरण हो रहा है। उदयपुर में खादी संस्थाओं से जुड़े सम्मेलन में मेरा एक पर्चा, 'खादी संस्थाएं: मानस बदलना होगा' जब पढ़ा गया तो मठी गांधीवादी आग बबूला हो उठे थे। तब तत्कालीन समिति अध्यक्ष विष्णुदत्त शर्मा ने मुझपर कठोर कार्रवाई का आश्वासन दिया था। संयोग से मेरी गैरहाजिरी में पर्चा पढ़ा गया था वर्ना खादी संस्थाओं के पदाधिकारी मेरी अहिंसक दैहिक समीक्षा कर ही देते। मेरी पेशी अनिल भाई के घर पर हुई तो उन्होंने कहा था कि तुम तो ऐसे ही जूत लगाते रहो। मेरी नौकरी यूं ही बची थी। और अंत में उनका अपनेपन से जुड़ा एक मार्मिक प्रसंग। मुझे अपने राजनीतिक संपर्कों के कारण परिवार का उलाहना सुनना पड़ता था। हमारे बांग्लादेश की जमींदारी के मुआवजे का मसला था। मैंने तत्कालीन मंत्री अरुण नेहरू तक से जुगाड़ लगवाया और असफल रहा था। तब रमेश जी ने मुझे बोर्डियाजी से गुहार लगाने की सलाह दी। उन्होंने संदर्भित कागज़ों के साथ दिल्ली आने को कहा। जाहिर है बोर्डिया जी की पहल पर पन्द्रह दिनों में ही राहत राशि मिल गई। मेरा परिवार उपकृत हुआ। मेरी साख भी बढ़ी ।❑

सुर्खियाँ हमारी सोच को कैसे बदल देती हैं!

❑

किसी लेख की हैडिंग किस प्रकार उसके मूल पाठ की तरफ पाठक का रूझान बनाना है, इसी पर इस आलेख में विमर्श है।

❑

मारिया कोनिकोवा

मनोवैज्ञानिक लंबे समय से जानते हैं कि पहला अनुभव या पहली छाप वाकई मायने रखती है। किसी चीज़ से पहली मुलाक़ात में हम जो देखते हैं, सुनते हैं, महसूस करते हैं या अनुभव करते हैं, वह इस बात को प्रभावित करता है कि हम उसके बाकी पहलुओं को कैसे समझेंगे। समाचारों और लेखों के शीर्षक भी इसके अपवाद नहीं हैं। जिस तरह लोग अपने पहनावे के ज़रिए अपनी छाप छोड़ सकते हैं, उसी तरह किसी आलेख का शीर्षक आगे आने वाले पाठ की पाठक की धारणा को सूक्ष्म रूप से बदल सकता है।

कुछ खास विवरणों या तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करके, एक शीर्षक पाठक के दिमाग में मौजूद ज्ञान को प्रभावित कर सकता है। शीर्षक के लिए शब्दों का चयन, उसे पढ़ने वाले पाठक की मानसिकता को इस तरह प्रभावित कर सकता है कि उसे बाद में वे विवरण याद रहें जो संपादक की उम्मीदों से मेल खाते हों। उदाहरण के लिए, मेरे किसी लेख का शीर्षक–एक जीन जिसके कारण हमें कम नींद की ज़रूरत होती है किसी भी तरह से गलत नहीं है। लेकिन यह शीर्षक लेख के एक खास हिस्से पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित करता है। अगर मैंने इसे हमें आठ घंटे की नींद क्यों चाहिए? कहा होता, तो लोग इसे अलग तरह से याद रखते।

समस्याएं तब पैदा होती हैं जब कोई शीर्षक थोड़ा–बहुत भ्रामक होता है। जैसा पिछले साल ब्रिटेन के अखबार डेली एक्सप्रेस में एक शीर्षक छपा था, वायु प्रदूषण अब फेफड़ों के कैंसर का प्रमुख कारण है। हालांकि, लेख में ऐसा कुछ नहीं कहा गया था, या यूं कहें कि बिल्कुल ही नहीं कहा गया था। इसके बजाय, इसमें बताया गया था कि प्रदूषण एक पर्यावरणीय कारण है; धूम्रपान जैसे अन्य कारण अभी भी मुख्य दोषी हैं। इस तरह का लेख प्रकाशित करने के निर्णय को समझना आसान है। चेतावनियां एक कॉलम में नहीं समातीं, और एक बार जब लोग कहानी पढ़ने के लिए पर्याप्त रूप से उत्सुक हो जाते हैं, तो वे उसकी

बारीकियों तक पहुंच ही जाते हैं। लेकिन, शीर्षक के गलत दिशा-निर्देश को ठीक करने के लिए लेख को पढ़ना पर्याप्त नहीं हो सकता है।

पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया विश्व-विद्यालय के मनोवैज्ञानिक और संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञानी उलरिच एकर ने भ्रामक हथकंडों पर विचार करने के लियते यह परीक्षण करने का निर्णय लिया कि शीर्षकों में मामूली-और थोड़े भ्रामक-बदलाव आगे पाठ को पढ़ने को किस प्रकार प्रभावित कर सकते हैं। वह देखना चाहते थे कि सूक्ष्मता और थोड़ी सी गलत दिशा कैसे काम करती है। 'जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी: एप्लाइड' में प्रकाशित अध्ययनों की एक शृंखला में, एकर ने लोगों को लेख पढ़वाए, जिनमें एकमात्र परिवर्तनशील कारक उनका शीर्षक था। उन्होंने कुल चार विषयों के लेख पढ़वाए-दो तथ्यात्मक तथा दो राय वाले। उदाहरण के लिए, एक तथ्यात्मक लेख में पिछले वर्ष की तुलना में चोरी की दरों में आये बदलाव की बात थी - 0.2 प्रतिशत की वृद्धि - जो पिछले दशक में दस प्रतिशत की गिरावट के विपरीत थी। लेख में कहा गया कि मामूली वृद्धि एक असामान्य बात थी; लंबा रुझान ही महत्वपूर्ण था। साथ में दिए गए शीर्षक ने दो रुझानों में से छोटे या बड़े को उजागर किया: क्रमशः चोरी की संख्या में वृद्धि और चोरी की दर में गिरावट का रुझान। राय वाले लेखों में एक विशेषज्ञ के विचारों को एक आम आदमी के विचारों के साथ प्रस्तुत किया गया था। उदाहरण के लिए, एक लेख में आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थों की सुरक्षा के बारे में एक नागरिक की चिंताओं की तुलना एक कंपनी के वैज्ञानिक की राय से की गई थी। शीर्षक दोनों पक्षों में से एक पर केंद्रित था। इस मामले में, या तो जीएम खाद्य पदार्थ दीर्घकालिक स्वास्थ्य जोखिम पैदा कर सकते हैं या जीएम खाद्य पदार्थ सुरक्षित हैं लिखा था। प्रत्येक प्रतिभागी ने चारों लेख पढ़े। एकर का लक्ष्य यह परखना था कि झुकाव की मात्रा मायने रखती है या नहीं। तथ्यात्मक लेख में, दिशाभ्रम स्पष्ट था-पूरा लेख एक व्यापक प्रवृत्ति के बारे में था, जिसमें एक छोटा सा विचलन था। राय वाले लेख में, यह कहीं अधिक सूक्ष्म था। लेख, सबसे पहले, राय था, और प्रत्येक विचार को अपना स्थान दिया गया था; यह पाठक पर निर्भर था कि वह राय पर कैसे विचार करे।

प्रत्येक लेख को पढ़ने के बाद, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया विश्वविद्यालय के छात्रों ने रुचि और पढ़ने में आसानी जैसी चीज़ों का आकलन करने के लिए इसे पाँच अलग-अलग पैमानों पर मापा गया। पूरा सेट पढ़ने वालों को छह प्रश्नों वाली एक प्रश्नोत्तरी दी गई, जिसमें स्मरण और अनुमान, दोनों से संबंधित प्रश्न थे। पता चला कि शीर्षक ने लेख को केवल नया रूप देने से कहीं ज़्यादा किया था। तथ्यात्मक लेखों के मामले में, भ्रामक शीर्षक ने पाठक की लेख के विवरण याद रखने की क्षमता को नुकसान पहुंचाया। यानी, शीर्षक के अनुरूप अंश, जैसे कि चोरी की घटती दर, शीर्षक से हटकर, विपरीत प्रवृत्ति की तुलना में याद रखने में आसान थे। अध्ययन के निष्कर्ष थे कि भ्रामक जानकारी इतनी स्पष्ट थी कि पाठकों को इसका एहसास हुआ और उन्होंने तदनुसार अपने अनुमानों को सही किया। अध्ययन के अनुसार, चाहे उन्होंने कोई भी शीर्षक देखा हो, उन्होंने भविष्यवाणी की कि अगले साल अपराध दर कम हो जाएगी।

हालांकि, राय वाले लेखों के मामले में, भ्रामक शीर्षक, जैसे कि आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थों को खतरनाक बताने वाला शीर्षक, पाठक की सटीक निष्कर्ष निकालने की क्षमता को कमज़ोर कर देता है। उदाहरण के लिए, जब आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थों की भविष्य की सार्वजनिक-स्वास्थ्य लागत का अनुमान लगाने के लिए कहा गया, तो भ्रामक शीर्षक पढ़ने वाले लोगों ने साक्ष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक लागत का अनुमान लगाया।

एकर और उनके सहयोगियों ने फिर एक दूसरे अध्ययन में परिणामों को दोहराया - इस बार, विसंगतियां शीर्षक और पाठ के बीच की बजाय शीर्षक और छवि के बीच थीं। प्रत्येक शीर्षक, लेख में प्रमुखता से दिखाए गए चेहरे की तस्वीर से मेल खाता था, या नहीं भी: इसमें या तो तस्वीर में मौजूद व्यक्ति का नाम था या किसी और का। कुल सोलह लेख, सभी एक अपराध से निपटे थे, और एक अच्छे व्यक्ति (पीड़ित या पुलिस अधिकारी या अभियोजक) और एक बुरे व्यक्ति (अपराधी) का वर्णन किया गया था। शीर्षक में, बदले में, एक या दूसरे का उल्लेख किया गया था, उदाहरण के लिए, थॉर्नली हत्या में आरोपित व्यक्ति बनाम थॉर्नली में दादा की हत्या। तब तस्वीर या तो हत्यारे की थी या पीड़ित की।

छात्रों द्वारा लेख पढ़ने के बाद,

उनसे आकर्षण, विश्वसनीयता, प्रभुत्व और आक्रामकता के आधार पर देखे गए चेहरों को रेटिंग देने के लिए कहा गया-ये रेटिंग अक्सर व्यक्तित्व की प्रारंभिक धारणाओं से प्रभावित होती हैं। फिर, चेहरों को तीसरी बार देखने के बाद, छात्रों को उन्हें बस अच्छा या बुरा के रूप में रेटिंग देनी थी।

यहाँ भी, एकर ने पाया कि प्रारंभिक धारणाएँ महत्वपूर्ण थीं और उन्हें आसानी से ठीक नहीं किया जा सकता था। जब तस्वीर शीर्षक से मेल खाती थी, तो अपराधी को ज़्यादा नकारात्मक रेटिंग मिलती थी, और पीड़ित को ज़्यादा सकारात्मक रेटिंग। हालाँकि, अगर शीर्षक तस्वीर से अलग होता था, तो पीड़ित को ज़्यादा नकारात्मक रेटिंग मिलती थी जब शीर्षक अपराधी के बारे में होता था, और अपराधी को ज़्यादा सकारात्मक रेटिंग मिलती थी जब शीर्षक पीड़ित के बारे में होता था। तस्वीर में किसकी भूमिका होगी, इस बारे में शुरुआती उम्मीदों ने बाद की रेटिंग्स को प्रभावित किया-भले ही, सैद्धांतिक रूप से, गलत धारणा को दो बार ठीक किया गया था, पाठ में और शीर्षक में।

ईमानदार पाठकों और संपादकों के लिए, दोनों अध्ययनों में एकर के निष्कर्ष चिंता का कारण हैं। पहली बात, गलत सूचना जब स्पष्ट होती है, उससे ज़्यादा नुकसान तब होता है जब वह सूक्ष्म होती है। हम बाद वाली बात को समझ जाते हैं और आगे बढ़ते हुए उसे सुधारते हैं। पहली वाली बात कहीं ज़्यादा कपटी और लगातार बनी रहती है। दुर्भाग्य से, पाठकों को गुमराह करने की जानबूझकर की गई

कोशिश के बजाय, यह लापरवाही या असावधानी का नतीजा होने की ज़्यादा संभावना होती है। मई में टाइम्स के इस लेख को ही लीजिए। शीर्षक में लिखा है, नकली पेंटिंग बेचने के लिए एक अच्छे कलाकार से ज़्यादा की ज़रूरत होती है। इसके साथ ही: एक गैलरी मालिक की तस्वीर, जो असल में दोषियों में से एक नहीं है। तस्वीर के साथ एक आपराधिक निहितार्थ जुड़ा हुआ है, और तस्वीर अनजाने में भी दूषित हो सकती है।

दूसरी बात यह है: लगभग हर पत्रकार ने पाठकों द्वारा सिर्फ़ शीर्षक के आधार पर किसी लेख पर व्यथित, क्रोधित, खारिज करने वाली, या यूँ कहें कि किसी भी अन्य प्रकार की नकारात्मक प्रतिक्रिया दिए जाने की पीड़ा का अनुभव किया है। लेख पढ़ें! लेखक अक्सर चिल्लाना चाहता है। हालांकि, एकर का काम यह दर्शाता है कि सही-या यूँ कहें कि गलत-शीर्षक के साथ, लेख पढ़ना पर्याप्त नहीं हो सकता है। यहाँ तक कि नेकनीयत पाठक जो पूरा लेख पढ़ते हैं, वे भी उस प्रारंभिक सूत्रीकरण पर आंशिक रूप से प्रतिक्रिया दे रहे होंगे।

अगर मैंने इस कॉलम का शीर्षक शीर्षक क्यों मायने रखते हैं रखा होता, तो मैं सबसे व्यापक विकल्प चुनता। अगले हफ़्ते, आपको शायद यह याद रहे कि शीर्षक महत्वपूर्ण हैं, लेकिन आप अपने दोस्त को ठीक-ठीक क्यों नहीं बता पाएँगे। अगर मैंने इसे भ्रामक शीर्षक आपको गुमराह कर सकते हैं कहा होता, तो आप उस अध्ययन के विवरण भूल जाते जो दर्शाता है कि हम वास्तव में तथ्यात्मक रूप से भ्रामक शीर्षकों पर काबू पा सकते हैं। शीर्षक क्यों मायने रखते हैं, इसके ग्यारह कारण? हो सकता है कि ज़्यादा लोगों ने क्लिक किया हो, लेकिन हो सकता है कि वे जानकारी को याद न रख पाएँ। दिलचस्प और सटीक दोनों होना हमेशा आसान नहीं होता, लेकिन, जैसा कि एकर का अध्ययन दर्शाता है, यह रोमांचक और गलत होने से बेहतर है।❑

आवासीय स्कूल में चरित्र निर्माण, भविष्य निर्माण

लेखक द्वय कह रहे हैं कि आवासीय विद्यालय समकालीन वास्तविकताओं के अनुकूल ढलती प्रिय परंपराओं और मूल्यों को संरक्षित रखते हैं। सं.

विपिन सोंधी

हिम्मत ढिल्लों

आवासीय विद्यालय लंबे समय से भारत और दुनिया भर में न केवल युवा मस्तिष्कों को बल्कि संपूर्ण व्यक्तित्व को आकार देने के एक विशिष्ट मॉडल के साथ। शैक्षिक उत्कृष्टता के स्तंभ रहे हैं। ब्रिटेन के ईटन कॉलेज और भारत के सेंट जॉर्ज, लॉरेंस स्कूल-सनावर, डेली कॉलेज, कोडाईकनाल इंटरनेशनल, दून स्कूल, मेयो कॉलेज, वाईपीएस, सिंधिया स्कूल और कई अन्य संस्थानों ने नेताओं, विचारकों और पेशेवरों की कई पीढ़ियाँ तैयार की हैं जिन्होंने विविध क्षेत्रों में अपनी छाप छोड़ी है।

लेकिन आवासीय विद्यालय को यह स्थायी आकर्षण क्या देता है? ये संस्थान बदलती शिक्षा पद्धतियों, तकनीकी क्रांतियों और विकसित होते पालन-पोषण दर्शन की दुनिया में प्रासंगिक क्यों बने हुए हैं? इसका उत्तर उनके समग्र ध्यान में निहित है: शैक्षणिक कठोरता को बढ़ावा देना, चरित्र निर्माण, नेतृत्व का पोषण और युवाओं को एक जटिल वैश्विक समाज में फलने-फूलने के लिए तैयार करना। उद्देश्य और सेवा की विरासत भारत के अग्रणी आवासीय विद्यालयों की विरासत देश के इतिहास में रची-बसी है। कई विद्यालयों की स्थापना औपनिवेशिक काल में हुई थी और समय के साथ उन्होंने सेवा, योग्यता और राष्ट्र निर्माण के मूल्यों को अपनाया। इन संस्थानों के पूर्व छात्रों ने देश के राजनीतिक, प्रशासनिक, सैन्य, सांस्कृतिक और व्यावसायिक परिदृश्य को आकार दिया है।

यह संदर्भ अधिकार या अभिजात्यवाद के बारे में नहीं है, बल्कि मूल्यों के बारे में है; ईमानदारी, सेवा, साहस और उत्कृष्टता के। ये मूल्य प्रीफेक्चरल प्रणाली जैसी परंपराओं में सुदृढ़ होते हैं, जो छात्रों को नेतृत्व के अवसर प्रदान करती है और ज़िम्मेदारी का भाव जगाती है।

शिक्षा और समाज में बदलावों के बावजूद, ये स्कूल परिवारों को आकर्षित करते रहते हैं क्योंकि ये एक व्यापक-आधारित, सर्वांगीण शिक्षण वातावरण प्रदान करते हैं जो शैक्षणिक उपलब्धि के साथ-साथ व्यक्तिगत विकास को भी बढ़ावा देता है। आवासीय विद्यालयों की शायद सबसे बड़ी ताकत चरित्र निर्माण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता में निहित है।

साथियों के साथ रहना, दिनचर्या साझा करना, विभिन्न गतिविधियों में सहयोग करना – स्वाभाविक रूप से अनुशासन, लचीलापन, सहानुभूति और सामाजिक कौशल को बढ़ावा देता है। दैनिक कार्यक्रम का पालन करने की सरल क्रिया से लेकर भोजन, खेलकूद, बाहरी भ्रमण और छात्रावास जीवन की सहयोगात्मक गतिशीलता तक, छात्र संरचना का सम्मान करना और टीम वर्क को महत्व देना सीखते हैं। एक ही ड्रेस पहनना, सामुदायिक स्थानों को साझा करना और सामूहिक गतिविधियों में भाग लेना वर्ग या पृष्ठभूमि की बाधाओं को कम करता है, समानता और सौहार्द को बढ़ावा देता है। इसके अलावा, कई आवासीय विद्यालय दैनिक जीवन में सुदृढ़ सांस्कृतिक मूल्यों को समाहित करते हैं, सेवा, सम्मान और अच्छे नागरिक होने की भावना का पोषण करते हैं। परंपराओं और अनुष्ठानों के माध्यम से सुदृढ़ विद्यालय और घर की भावना, स्थायी सिद्धांतों में निहित एक सामूहिक पहचान को बढ़ावा देती है।

इन विद्यालयों द्वारा प्रदान किए जाने वाले बाहरी अनुभव – ट्रैकिंग, लंबी पैदल यात्रा, कैंपिंग – व्यक्तिगत विकास में और योगदान करते हैं। यह कोई संयोग नहीं है कि भारत की पर्वतारोहण परंपरा का नेतृत्व अक्सर आवासीय विद्यालयों के पूर्व छात्रों और कर्मचारियों द्वारा किया गया है। आवासीय मॉडल का एक प्रमुख अंतर यह है कि सीखना केवल औपचारिक कक्षा के घंटों तक ही सीमित नहीं है। संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र – चाहे शौक, खेल, समाज सेवा या अवकाश – को पाठ्यक्रम का एक हिस्सा माना जाता है।

घर से दूर रहना छात्रों को आत्मनिर्भर होना, अपना समय प्रबंधित करना और पारस्परिक गतिशीलता को नियंत्रित करना सिखाता है। दिन के स्कूल के छात्रों के विपरीत, जो परिवार के सहयोग पर अधिक निर्भर रह सकते हैं, आवासीय छात्र कम उम्र में ही स्वतंत्रता विकसित कर लेते हैं। आवासीय विद्यालय 21वीं सदी के महत्वपूर्ण कौशल जैसे समस्या–समाधान, बातचीत, संचार और नेतृत्व के निर्माण के लिए भी उपजाऊ आधार हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का समग्र शिक्षा पर जोर इस दृष्टिकोण के साथ पूरी तरह मेल खाता है, जो न केवल संज्ञानात्मक बल्कि भावनात्मक और सामाजिक बुद्धिमत्ता का भी विकास करता है। कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि आवासीय विद्यालय हमेशा विशुद्ध शैक्षणिक स्तर पर शीर्ष पर नहीं हो सकते। फिर भी उनकी असली ताकत उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की व्यापकता में निहित है। इन परिस्थितियों में पोषित आत्मविश्वास, जिज्ञासा और सहयोगात्मक भावना अक्सर ऐसे सर्वांगीण व्यक्ति तैयार करती है जो विभिन्न वातावरणों में उत्कृष्टता प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

आज के आवासीय विद्यालय विविधता को अपनाते हैं और छात्रों को वैश्वीकृत दुनिया से जुड़ने के लिए तैयार करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, जातियों और यहाँ तक कि देशों के छात्रों के एक साथ रहने से, सहिष्णुता और समझ स्वाभाविक रूप से उभरती है।

छात्रावास का जीवन अपने आप में एक समृद्ध शैक्षणिक स्थान है – जिसे विद्वान तीसरी कक्षा कहते हैं – जहाँ दैनिक बातचीत के माध्यम से मूल्य, सहानुभूति और सामाजिक कौशल सीखे जाते हैं। छात्र विभिन्न सांस्कृतिक सीमाओं के पार भिन्नताओं की सराहना करना, संघर्षों को सुलझाना और स्थायी मित्रता बनाना सीखते हैं, जो वैश्विक नागरिकता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, कई आवासीय विद्यालय अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण, स्थिरता और डिजिटल साक्षरता को शामिल करने के लिए अपने पाठ्यक्रम और शैक्षणिक दृष्टिकोणों को सचेत रूप से विकसित कर रहे हैं।

आवासीय विद्यालय एक स्वस्थ वातावरण प्रदान करते हैं जिसे 'डिजिटल डिटॉक्स' कहा जा सकता है, जो गहन एकाग्रता, मज़बूत पारस्परिक संबंधों और अधिक मानसिक लचीलेपन को बढ़ावा देता है।

यह स्वीकार करना ज़रूरी है कि आवासीय स्कूली शिक्षा अपनी चुनौतियों से रहित नहीं है। अभिजात्यवाद, परिवारों से अलगाव, मानसिक स्वास्थ्य दबाव और वहनीयता से जुड़ी चिंताएँ जायज़ हैं और उन्हें संवेदनशीलता से संबोधित किया जाना चाहिए। आत्म–चिंतनशील औरअनुकूली बने रहकर, आवासीय विद्यालय समग्र शिक्षा के प्रकाश स्तंभ के रूप में कार्य करना जारी रख सकते हैं।

एक स्थायी प्रभाव आवासीय विद्यालय के अनुभव का सबसे स्थायी पहलू यह है कि यह समुदाय की आजीवन भावना को बढ़ावा देता है। ❑

थैंक यू, गांधी: आंसू में कलम डुबो कर लिखी गाथा!

जाने-माने शिक्षाविद् कृष्ण कुमार बरसों से अपनी गंभीर वैचारिक दृष्टि से शिक्षा और शिक्षण की हमारी समझ को नये आयाम देते रहे हैं। शिक्षा के चिंतन के अलावा नागरिक अधिकारों पर उनके लेखन को लोग गंभीरता से पढ़ते हैं और सीखते हैं। उनके लेख, पुस्तकें और व्याख्यान हमेशा ही हमारे मानस को झकझोरते रहे हैं। अपनी नई किताब थैंक यू, गांधी में कृष्ण कुमार लेखन के एक नये और अनूठे अन्दाज़ में सामने आये हैं। याहन किताब महात्मा गांधी को एक भावपूर्ण श्रद्धांजलि है जिसमें कल्पना और यथार्थ, अतीत और वर्तमान, संस्मरण और सामाजिक टिप्पणियां सब कुछ इस तरह आपस में गुंथे हुए हैं कि इस साहित्य की किसी स्थापित विधा में नहीं रखा जा सकता।

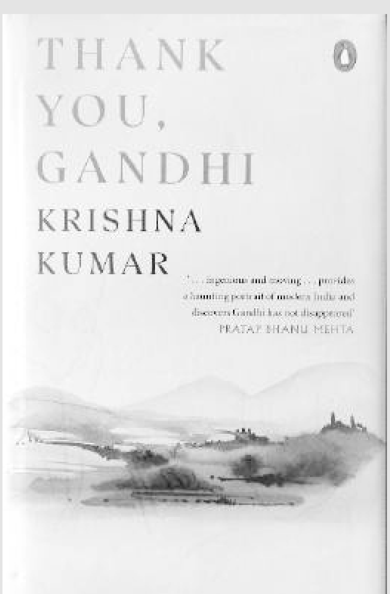

लेखक ने बेहतरीन उपन्यास शैली में कहानी रची है और उसे प्रथम पुरुष में प्रस्तुत किया है। यह किताब महात्मा गांधी के बारे में है, लेकिन यह दोस्ती की खूबसूरती के बारे में भी है। उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रोफेसर कुमार अपने बचपन के दोस्त मुन्ना के गांधी पर विचारों को प्रस्तुत करने की कोशिश करता है, खासकर ऐसे समय में जब देशाहनकारी देशाहंकारी और सिंहनाद वाले हिंदुत्व उठान पर है जिसमें गांधी की सीख को नकारा जा रहा है।

दो बचपन के मित्र शुरू से साथ पढे, साथ खेले। बड़े हो जाने पर अलग-अलग जगहों पर पढ़ने चले जाने तथा बाद में अलग-अलग नौकरियों में चले जाने के बावजूद दोनों में उम्र भर लगातार संपर्क बना रहता है। कहानी कहने वाला शिक्षा जगत में चला गया और उसका मित्र भारतीय प्रशासनिक सेवा में। दोनों आज़ाद भारत के उस दौर का प्रतिनिधित्व करते हैं जब युवाओं ने बड़े सपने देखे थे। लेखक का मित्र मुन्ना, एक संवेदनशील आईएएस अधिकारी विनेश प्रताप सिंह है, जिसने जवाहरलाल नेहरू के आधुनिक और महात्मा गांधी के सहिष्णु और विचारवां

राष्ट्र के दृष्टिकोण के अनुरूप राष्ट्र निर्माण का सपना देखा था।

प्रशासनिक सेवा में रहते हए उसका मित्र बेचैन रहता है किन्तु अपनी सीमाओं में रहते हुए नागरिकों की मदद में लगा रहता है। दोनों सेवानिवृत्त हो जाते हैं, और यह कहानी शुरू होती है उनके सपनों के टूटने के साथ। ये सपने उन दोनों के ही नहीं बल्कि भारत के उन समस्त नागरिकों के भी हैं जिन्होंने 1947 में आजादी की सुबह देखे थे।

उपन्यास के नायक को ग्लानि है कि अब वह भारत नहीं रहा है जो हमें गांधीजी से विरासत में मिला था। लेखक मानता है कि भारत राजनीतिक रूप से एक अभिशप्त देश है जहां गांधी के हत्यारे प्रशंसक संसदीय चुनाव जीत जाते हैं। तब सवाल उठता है कि क्या यह वही देश है जिसे बनाने के लिए एक बूढी और कमजोर काया अपने अच्छे कार्यों के लिए सीने में तीन गोलियां खाने से पहले हमारे और मानवता के लिए हजारों अच्छे विचार छोड़ गया। वह देखता है कि सरकार ने वर्षों से सत्य को दबाने की सूक्ष्म कला में महारत हासिल कर ली है। राज्य को केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने में रुचि होती है, चाहे इससे कितना भी मानवीय कष्ट क्यों न उठाना पड़े। जब अंग्रेज यहां थे तब भी यही स्थिति थी और अब भी स्थिति कुछ अलग नहीं है।

लेखक मानता है कि भारत की स्थिति में कुछ गड़बड़ है। भारत अपना स्वयं का अस्तित्व खो रहा है। जिससे एक पूरी पीढ़ी जुड़ी हुई है जिसे लेखक की पीढ़ी की पीड़ा और निराशा का कोई अंदाजा नहीं है।

वर्तमान शासन को अनैतिक मानने वाला लेखक कहता है कि महात्मा गांधी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे, बल्कि वह संत थे, जिसका आह्वान किया जा सकता था, जिससे प्रार्थना की जा सकती थी, तथा उदासी और चिंता को दूर करने के लिए उन्हें धन्यवाद दिया जा सकता था।

उस संत की नई तालीम की आज फिर जरूरत है क्योंकि अच्छाई और सच्चाई की खोज में पैदा हुआ विचार कभी नहीं मरता। लेखक अंग्रेजी महिला मार्जोरी साइक्स की नई तालीम पर लिखी छोटी पुस्तिका के समापन इस वाक्य उस वाक्य को उद्धृत करता है क्योंकि यह सच है, इसका समय आएगा।

लेखक को लगता है वह समय शायद अब आ गया है। गांधी कि धार्मिक आस्था सत्य में थी। वे सत्य को ही ईश्वर मानते थे। उनके लिए व्यक्तिगत ईमानदारी प्रमुख थी।

निराशा और चिंता से जूझते हुए कि नया राजनीतिक लोकाचार जल्द ही देश को निगल जाएगा और अगर राज्य टूट गया तो क्या होगा की अपनी इस कल्पना से कथा का सूत्रधार अपने मित्र को भयभीत होता पाता है। लेकिन जब वह गांधी को फिर पढ़ता है तो अपने को हल्का महसूस करता है।

आज़ादी के बाद जो गलत हुआ थैंक यू, गांधी में उसकी पीड़ा है जिसे लेखक आशाओं का भस्म हो जाना कहता है।।

एक जगह कहानी के नायक का मित्र अपने पिता को याद करते हुए कहता है कि वे यही कहते कि गांधी आजीवन भगोड़े रहे। उन्होंने कभी कोई

पद नहीं संभाला जिससे उन्हें सत्ता और शक्ति की मजबूरियों का अंदाज़ा होता। सत्य के लिए साहस और वीरता का उनका संदेश उदात्त और पवित्र था – जो ज़्यादा दिनों तक नहीं टिक सकता। लेखक भी गांधी के शुरुआती लेखन और भाषणों में कड़वापन की झलक पाता है। उसे लगता है 'भारत छोड़ो' वाले भाषण में भी गांधी में कड़वाहट लगती हैं – जो शायद उनके धैर्य के चुकने के कारण हैं।

कृष्ण कुमार मानते हैं कि सावरकर के अनुयायी गांधीजी की उपयोगिता के मूल्य से अवगत हैं। वे उनका उपयोग अपनी सत्ता के लिए करेंगे, जिसे उन्होंने गांधी से छुटकारा पाने के बाद बहुत पहले शुरू भी कर दिया।

थैंक यू, गांधी कवि प्रदीप के शब्दों में आंसू में कलम डुबोय के लिखी गई लगती है जो पाठक को इसे बार-बार पढने के लिए अपनी ओर खींचती रहेगी। **–रा. बो.**❑

अनुत्तर के अमूर्त रंग में भारतीय दर्शन और चेतन की अनुगूंज

❑

अमित कल्ला

अमूर्त को व्यक्त करने के लिये रंग चाहिए और शब्द चाहिए। रंग हो, शब्द हो तो भी बात नहीं बनती। उसे व्यक्त करने के लिये कूची वाला चित्रकार और कलम वाला शब्दकार साधक चाहिए। अमित कल्ला को यह दोनों वरदान मिले हुए हैं इसलिए वे कैनवास पर अमूर्त को रचते हैं तो कविता से भी उसी साधिकार अभिव्यक्त करते हैं। अमित एक अर्थ में स्व-चित्र बनाते हैं। एक कलाकार के रूप में वह समय के साथ विकसित हुए हैं और अपनी पहचान बनाई है।

उनकी सद्य प्रकाशित पुस्तक 'अनुत्तर के अमूर्त रंग' हमारे हाथ में है। करीब सौ पेज की किताब के प्रत्येक पृष्ठ पर एक छोटी कविता मौन में बोलती है, जिसे जितनी बार पढ़ा जाए जीवन के गूढ रहस्य की कोई नयी परत खुलती है, मगर फिर लगता है कि जो जानना है वह तो अज्ञेय ही रह गया।

अमूर्त में कहीं पहुंचा नहीं जाता, वह तो सत्य की सतत खोज होती है। भारतीय आध्यात्म, योग, वेदान्तदर्शन से प्रेरित अमित कल्ला की यह चौथी काव्य पुस्तक है जिसमें वे अनुत्तर के अमूर्त रंग बिखेरते हुए उपस्थित हैं।

भारत में प्रश्न करने की सनातन परंपरा रही है। प्रश्न भारतीय दर्शन में प्रमुख भूमिका निभाते आए हैं। हमारे पुरातन ग्रंथ प्रश्नों से ही शुरू होते रहे हैं। प्रश्न सत्य की खोज की साधना होते हैं। प्रश्नों के उत्तर नये प्रश्न खड़े करते हैं।

गुरु और शिष्य की प्रश्नों और उत्तरों की यात्रा शब्दों से ही शुरू होती है। किंतु जब साधना उच्चतर स्तर पर पहुंच जाती है तब मौन उतर आता है। तब प्रश्न ही उत्तर बन जाता है और लगता है जैसे वह अनुत्तरित रह गया। यह रहस्य अमूर्त में व्यक्त होता है, जिसे अमित कल्ला जैसे साधक चित्रकला में और शब्द शिल्प से कविता में रच कर व्यक्त करते हैं। अमित के चित्र और कविताएं जिज्ञासू को जीवन के रहस्य की गहराइयों में खींच कर ले जाते हैं। इस कवि चित्रकार की कविताएं अनोखी तृप्ति देते हुए नई अनूठी प्यास जगाती हैं। इसे वे एक कविता में कहते हैं: 'कठिन है/ धूप-चंदन की महक पकड़ना/ मिटा देती जो/ रचते हुए स्वयं को आकाश में टिका सन्नाटा/ शब्द नहीं अर्थ जागते हैं/ दिशा बदल जाती है/ सुगंध लिए/ चंदन वनों से रेगिस्तान की ओर'।

बैंकॉक में भारतीय दूतावास के स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक डॉ. चैतन्य प्रकाश योगी इस पुस्तक की प्रस्तावना में सही लिखते हैं कि ये कविताएं आधुनिक जगत को आत्मदृष्टि सम्पन्न होने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि इन कविताओं में सांसारिक निस्संगता है किन्तु प्रकृति के साथ गहरी अंतरंता (भी) है। **–रा. बो.**❑

गहराई से ध्यान लगा कर काम करने का कौशल जरूरी

❑

भारत में 'ध्यान' की अति प्राचीन परंपरा रही है। बदले हुए आधुनिक समय में भी गहनता से काम करके का कौशल अर्थात गहरा ध्यान लगा कर सोचने और काम करना महत्वपूर्ण बना हुआ है। कंप्यूटर विज्ञान के प्रोफेसर और लेखक इसी की बात कह रहे हैं। सं.

❑

कैल न्यूपोर्ट

गहनता से काम एक ऐसा कौशल है जिसका आज बहुत महत्व है। इसे पाने के दो कारण हैं। पहला सीखने से जुड़ा है। हम एक ऐसी सूचना अर्थव्यवस्था में हैं जो तेज़ी से बदलती जटिल प्रणालियों पर निर्भर है। हमारे बच्चों ने कंप्यूटर भाषाएं सीखीं, वे दस साल पहले मौजूद नहीं थीं और संभवतः दस साल बाद पुरानी हो जाएंगी। इसी तरह, 1990 के दशक में मार्केटिंग के क्षेत्र में आने वाले किसी व्यक्ति को शायद यह अंदाज़ा नहीं था कि आज उन्हें डिजिटलविश्लेषण में महारत हासिल करने की ज़रूरत होगी। इसलिए, अर्थव्यवस्था में मूल्यवान बने रहने के लिए, हमें जटिल चीज़ों को जल्दी सीखने की कला में महारत हासिल करनी होगी। इस कार्य के लिए गहन परिश्रम की आवश्यकता है। यदि आप इस क्षमता को विकसित नहीं करते हैं, तो तकनीक के विकास के साथ आप पिछड़ सकते हैं।

गहनता से काम के मूल्यवान होने का एक और कारण है। डिजिटल नेटवर्क क्रांति का प्रभाव दोनों तरफ़ पड़ता है। अगर आप कुछ उपयोगी बना सकते हैं, तो उसके दर्शकों (जैसे, नियोक्ता या ग्राहक) तक असीमित रूप से पहुँच सकते हैं जो आपके प्रतिफल को बहुत बढ़ा देता है। दूसरी ओर, अगर आप जो बना रहे हैं वह औसत दर्जे का है, तो आप मुश्किल में हैं, क्योंकि आपके दर्शकों के लिए ऑनलाइन बेहतर विकल्प ढूँढ़ना बहुत आसान है।

चाहे आप कंप्यूटर प्रोग्रामर हों, लेखक हों, मार्केटर हों, सलाहकार हों या उद्यमी हों, आपकी स्थिति ऐसी है जैसे आप जंग में हों, जहां सफल होने के लिए आपको अपनी क्षमता के अनुसार सबसे बेहतरीन सामग्री बनानी होगीएक ऐसा काम जिसके लिए गहराई की ज़रूरत होती है।

गहनता से काम की बढ़ती ज़रूरत नई है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में, एक छोटा सा कुशल श्रमिक और पेशेवर वर्ग था जिसके लिए गहन कार्य महत्वपूर्ण था, लेकिन ज़्यादातर कर्मचारी बिना किसी ध्यान भटकाव के ध्यान केंद्रित करने की क्षमता विकसित किए बिना भी ठीक-ठाक काम कर सकते थे, और उनके काम में ज़्यादा कुछ नहीं बदला। दशकों तक उन्होंने इसे बनाए रखा। लेकिन जैसे-जैसे हम सूचना अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं, हमारी ज़्यादा से ज़्यादा आबादी ज्ञान कार्यकर्ता बन रही है, और गहनता

से काम एक महत्वपूर्ण मुद्रा बनता जा रहा है। लेकिन ज़्यादातर लोगों ने अभी तक इस वास्तविकता को नहीं पहचाना है।

दूसरे शब्दों में, गहनता से काम कोई पुराना कौशल नहीं है जो अप्रासंगिक हो रहा है। बल्कि यह वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी सूचना अर्थव्यवस्था में आगे बढ़ने की चाह रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण क्षमता है, जो उन लोगों को धक्का देकर बाहर कर देती है जो अपनी जीविका नहीं कमा पा रहे हैं। असली इनाम उन लोगों के लिए नहीं हैं जो फ़ेसबुक का इस्तेमाल करने में सहज हैं (एक सतही काम, जिसे आसानी से दोहराया जा सकता है), बल्कि उन लोगों के लिए हैं जो इस सेवा को चलाने वाले अभिनव वितरित सिस्टम बनाने में सहज हैं (एक बेहद गहन काम, जिसे दोहराना मुश्किल है)। गहन कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि हम इसे, बिज़नेस लेखक एरिक बार्कर के शब्दों में, 21वीं सदी की महाशक्ति मान सकते हैं।

अब तक हमने दो विचारधाराएँ देखी हैंएक गहन कार्य की बढ़ती कमी के बारे में और दूसरी इसके बढ़ते मूल्य के बारे मेंजिन्हें हम गहनता से काम के विचार में जोड़ सकते हैं। यह कहें तो गलत नहीं होगा कि गहनता से काम करने की क्षमता हमारी अर्थव्यवस्था में तेज़ी से दुर्लभ होती जा रही है और साथ ही यह तेज़ी से मूल्यवान भी होती जा रही है। परिणामस्वरूप, जो कुछ लोग इस कौशल को विकसित करते हैं और फिर इसे अपने कामकाजी जीवन का मूल बनाते हैं, वे फलते-फूलते रहेंगे।

अब समय आ गया है कि आप आपने उथलेपन की बजाय गहराई के प्रति आकर्षण को औपचारिक रूप दें और उसे समझाने का एक प्रयास करें। साथ ही अपने जीवन को गहनता के काम के इर्द-गिर्द फिर से बना सकें। इसे अभ्यास से विकसित किया जा सकता है। आपको निर्दयतापूर्वक अपने उथलेपन को हटाना होगा और अपनी गहराई की तीव्रता को विकसित करने के लिए बड़ी मेहनत करनी होगी।

आप जानते हैं जब कार्ल युंग मनोचिकित्सा के क्षेत्र में क्रांति लाना चाहते थे, तो उन्होंने जंगल में अपना आश्रय स्थल बनाया। जंग का बोलिंगन टॉवर एक ऐसी जगह बन गया जहाँ वे अपनी गहन चिंतन क्षमता को बनाए रख सकते थे और फिर उस कौशल का प्रयोग करके ऐसी अद्भुत मौलिकता का काम कर सकते थे जिसने दुनिया बदल दी। आप भी अपने निजी बोलिंगन टॉवर बनाने का प्रयास कर सकते हैं ताकि आप एक ऐसी क्षमता विकसित कर सकें जो एक बढ़ती हुई विचलित दुनिया में वास्तविक मूल्य उत्पन्न कर सके; और एक ऐसे सत्य को पहचान सकें जिसे पिछली पीढ़ियों के सबसे उत्पादक और महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों ने अपनाया था: गहनता का जीवन।

इसके लिए आपको अपना ध्यान केंद्रित करना सीखना होगा। कठिन चीज़ों को जल्दी सीखने के लिए, आपको बिना किसी ध्यान भटकाव के पूरी तरह से ध्यान केंद्रित करना होगा। दूसरे शब्दों में, सीखना एक गहन कार्य है। अगर आप गहराई में जाने में सहज हैं, तो आप हमारी अर्थव्यवस्था में फलने-फूलने के लिए ज़रूरी बढ़ती जटिल प्रणालियों और कौशलों में भी महारत हासिल कर पाएँगे। अगर आप उन लोगों में से एक हैं जिनके लिए गहराई असहज है और ध्यान भटकना सर्वव्यापी है, तो आपको ये उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि ये प्रणालियां और कौशल आपको आसानी से मिल जाएंगे।

हालाँकि, अपने कार्यदिवस में एकाग्र ध्यान विकसित करने का एक छिपा हुआ लेकिन उतना ही महत्वपूर्ण लाभ और भी है: ऐसी एकाग्रता आपके ध्यान तंत्र पर कब्ज़ा कर लेती है, आपको उन कई छोटी और कम सुखद चीज़ों पर ध्यान देने से रोकती है जो अनिवार्य रूप से और लगातार हमारे जीवन में व्याप्त रहती हैं। मनोवैज्ञानिक मिहाली सिक्सज़ेंटमिहाली, स्पष्ट रूप से इस लाभ की पहचान करते हैं जब वे कहते हैं इतनी गहन एकाग्रता विकसित हो जाए कि किसी भी अप्रासंगिक चीज़ के बारे में सोचने या समस्याओं के बारे में चिंता करने के लिए कोई ध्यान ही न बचे।

इसमें एक बड़ी बाधा यह है कि हम अनजाने में अपने दिमाग को गहनता से काम करने में कमज़ोर बना रहे हैं। मोबाइल इंटरनेट के आगमन ने, जहाँ हम कहीं भी, कभी भी इंटरनेट का उपयोग कर सकते हैं, बहुत से लोगों को नवीनता की लत लगा दी है। थोड़ी सी भी बोरियत महसूस होते ही, उन्हें अपने स्मार्टफ़ोन चेक करके खुद को नवीनता का झटका देने की ज़रूरत होती है। मानव जाति के इतिहास में हम पहले ऐसा नहीं कर पाए हैं, और अब अचानक, हर कोई ऐसा कर सकता है। हमारा दिमाग इसके लिए तैयार नहीं है, और इसलिए होता यह है कि हमें बोरियत और नवीनता के बीच एक संबंध मिल जाता है। ❑

स्मृति शेष

जेम्स बॉन्ड को लोगो देने वाले कैरॉफ़ का निधन

रा एक विपुल लेकिन उपेक्षित ग्राफिक डिजाइनर, जिन्होंने 007 जेम्स बॉन्ड लोगो, नॉर्मन मेलर की ‘द नेकेड एंड द डेड’ किताब का जैकेट आवरण और वेस्ट साइड स्टोरी, ए हार्ड डेज़ नाइट, लास्ट टैंगो इन पेरिस और कैबरे सहित सैकड़ों फिल्मों के पोस्टर बनाए, का 17 अगस्त को 103 वर्ष की आयु में अमरीका के मैनहट्टन में निधन हो गया। 18 अगस्त को को उनकी आयु 104 वर्ष होती।

उनके बनाए डिजाइनों को तो सब जानते थे लेकिन खुद उनको नहीं क्योंकि वे अपने डिज़ाइनों पर अपना नाम नहीं लिखते थे। उन्होंने काफी हद तक बिक्री-प्रचार से परहेज किया।

स्टीवन हेलर और ग्रेग डी’ऑनफ्रियो द्वारा लिखित 2017 में आई पुस्तक द मॉडर्न्स: मिडसेंचुरी अमेरिकन ग्राफिक डिज़ाइन में उन्हें 60 से अधिक प्रसिद्ध डिजाइनरों में शामिल नहीं किया गया था, जिनमें सॉल बास, लियो लियोनी और पॉल रैंड भी शामिल थे।

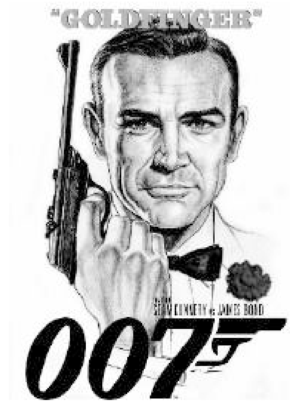

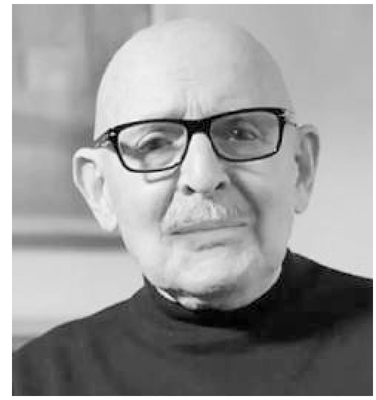

कला समीक्षकों तथा विद्वानों को यह बात चौंकाने वाली लगती है कि वह अज्ञात रहे क्योंकि कैरॉफ़ का प्रचुर काम व्यापक रूप से पहचाना गया। उनकी एक व्याख्यात्मक शैली थी जिसमें वे किसी पुस्तक के आवरण या फ़िल्म के प्रचार पोस्टर में उसके सार को साहसिक, सुरुचिपूर्ण, और नाटकीय तरीके से व्यक्त करने में सक्षम थे। ❑

RS-CIT
एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज
- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें
या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, सितम्बर, 2025 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

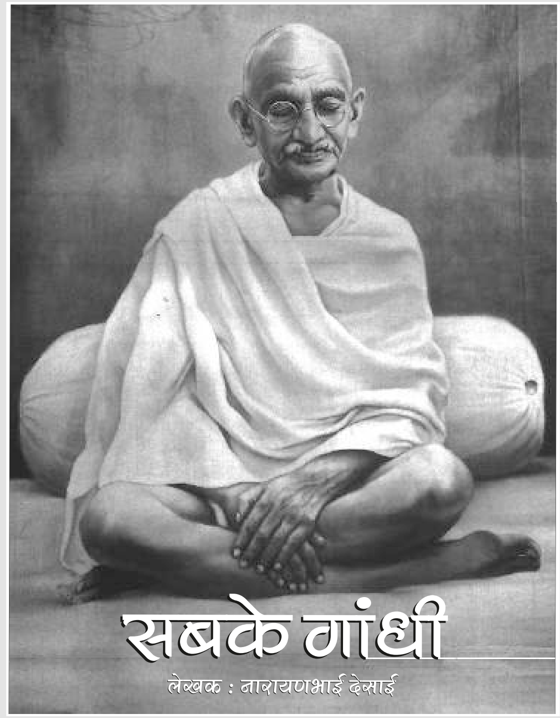

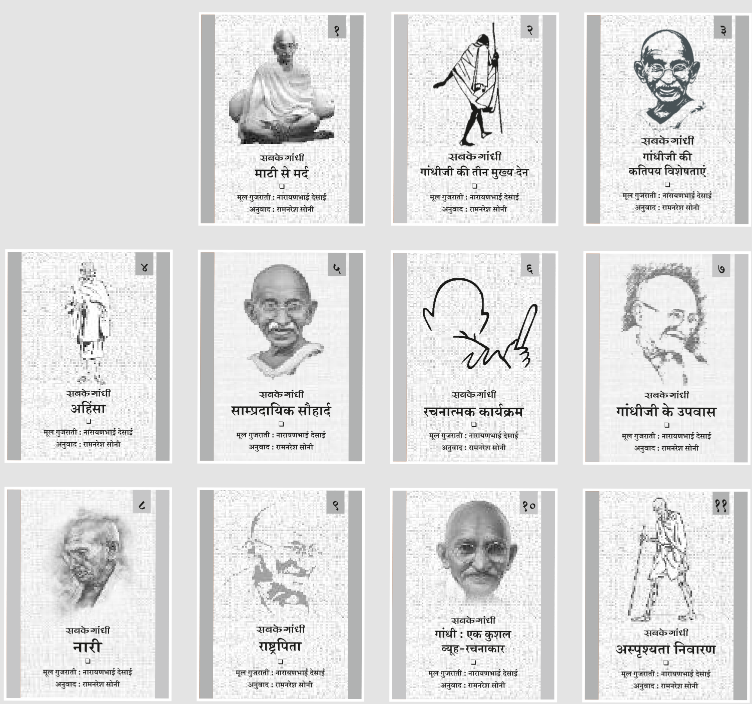

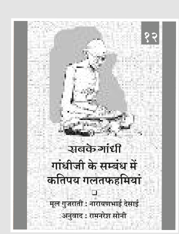

सबके गांधी

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।